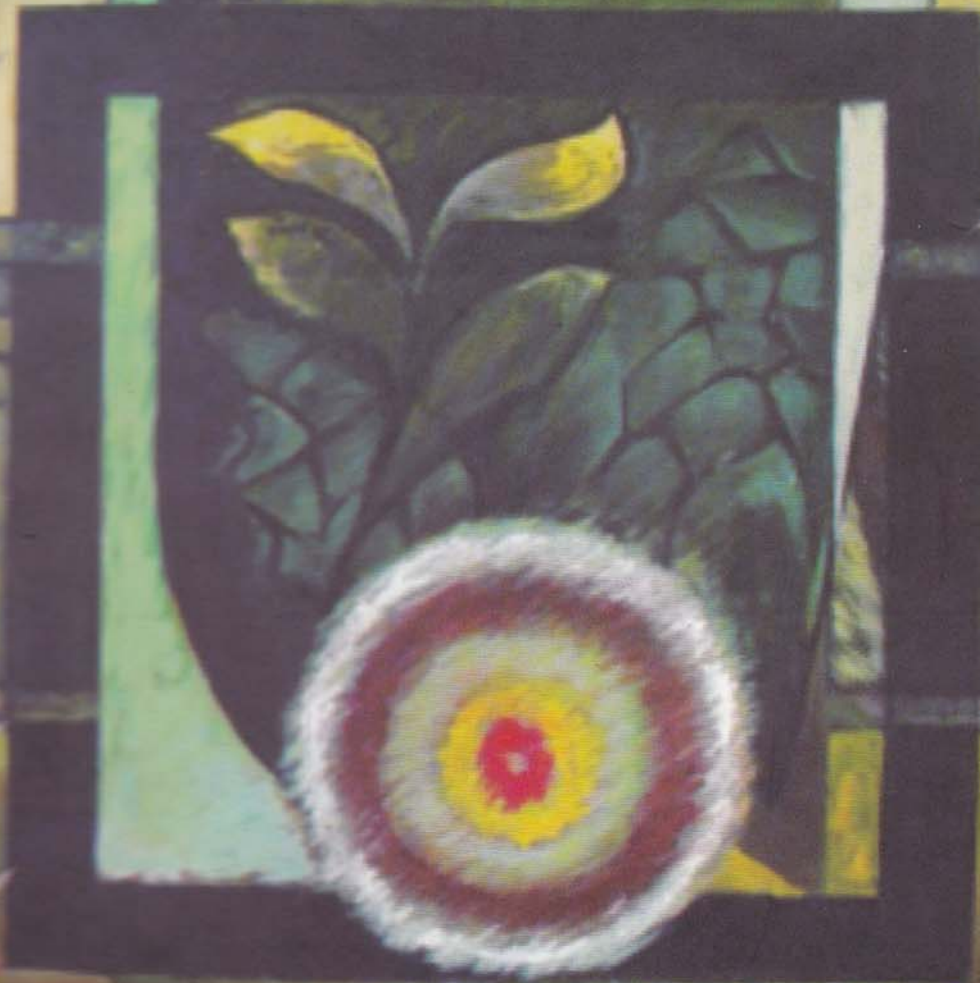


दलित चेतना : कविता

सम्पादन

रमणिका गुप्ता



आनन्दप्रकाश प्रकाशक



रमणिका गुप्ता

जन्म : 22 अप्रैल, 1930, सुनाम (पंजाब)

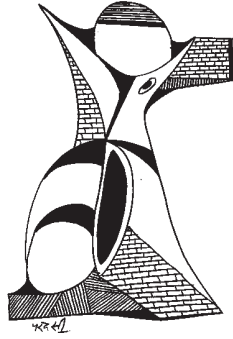
शिक्षा : एम.ए., बी.एड.

बिहार/झारखंड की पूर्व विधायक एवं विधान परिषद् की पूर्व सदस्या। कई गैर-सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं से सम्बद्ध तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक कार्यक्रमों में सहभागिता। आदिवासी और दलित महिलाओं-बच्चों के लिए कार्यरत। कई देशों की यात्राएं। विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित।

प्रकाशित कृतियां : पातियां प्रेम की, भीड़ सतर में चलने लगी है, तुम कौन, तिल-तिल-नूतन, मैं आजाद हुई हूं, अब मूरख नहीं बनेंगे हम, भला मैं कैसे मरती, आदिम से आदमी तक, विज्ञापन बनता कवि, कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का, प्रकृति युद्धरत है, पूर्वांचल : एक कविता-यात्रा, खूटे, अब और तब, गीत-अगीत (सभी काव्य-संग्रह); सीता, मौसी (उपन्यास); बहू-जुठाई (कहानी-संग्रह); हादसे (आत्मकथा); लहरों की लय (यात्रा-संस्मरण); मेरे साक्षात्कार, दलित प्रश्न : संवाद और यूटोपिया, समय के साथ, स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, दलित हस्तक्षेप, निज घरे परदेसी, साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे, दलित चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, दक्षिण-वाम के कटघरे और दलित-साहित्य, असम नरसंहार—एक रपट, राष्ट्रीय एकता, विघटन के बीज (गद्य पुस्तकें); 'सृजन के आइने में : मलमूत्र ढोता भारत' के अलावा छः काव्य संग्रह तथा 'भारतीय दलित साहित्य कोश' हिन्दी एवं मराठी सहित चार अन्य दलित कहानी-संग्रह एवं पंद्रह विभिन्न भाषाओं के साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन एवं सम्पादन। शरण कुमार लिंबाले की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' का मराठी से हिंदी में अनुवाद तथा गेल ओमवेट की पुस्तक 'दलित विजन' का हिंदी अनुवाद। इनके उपन्यास मौसी का अनुवाद तेलुगू में 'पिन्नी' नाम से और पंजाबी में 'मासी' नाम से हो चुका है। जहीर गाजीपुरी द्वारा उर्दू में अनूदित इनका कविता-संकलन 'कैसे करोगे तकसीम तवारीख' भी प्रकाशित। इनकी कविताओं का पंजाबी अनुवाद बलवीर चंद्र लांगोवाल ने किया जो 'बागी बोल' नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त आदिवासी, दलित एवं स्त्री मुद्दों पर 28 पुस्तकें संपादित।

सम्प्रति : सन् 1985 से युद्धरत आम आदमी (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) का सम्पादन।

सम्पर्क : रमणिका फाउंडेशन, ए-221, ग्राउंड फ्लोर, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली-110024



दलित चेतना : कविता

दलित चेतना : कविता

सम्पादन
रमणिका गुप्ता

ज्योतिलोक प्रकाशन

दिल्ली-110033

ISBN : 81-903785-6-2

© रमणिका फाउंडेशन

प्रकाशक

ज्योतिलोक प्रकाशन

21, टैगोर मार्ग, केवल पार्क,
आजादपुर, दिल्ली-110033

मूल्य : 300.00

संस्करण : 2012

आवरण : उमेश शर्मा

लेजर कम्पोजिंग : उमेश लेज़र प्रिंटर्स, दिल्ली

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली

हिन्दी दलित कविता : कुछ बिन्दु

चन्द्रेश्वर कर्ण

स्वाधीनता के पूर्व किसी दलित आंदोलन की शक्ति और प्रेरणा के वगैर दलित जीवन को केन्द्र में रखकर हिन्दी में दलित लेखन की शुरुआत हो चुकी थी। दलित-चेतना की सुगबुगाहट की आहट मिलने लगी थी। प्रेमचन्द के 'गोदान' में गाँव के चमार ब्राह्मण मातादीन के गले में माँस का टुकड़ा उतार देते हैं। आधी शती पूर्व यह घटना हो चुकी थी। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'विराम चिह्न' में एक अछूत युवक मंदिर-प्रवेश के प्रयत्न में अपना रक्तदान कर चुका था। इस सबके पीछे बदलता राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य था। एक वर्ग के नहीं चाहने के बावजूद यह हो रहा था। यह होना था। ब्राह्मणवाद का जितना विरोध प्रेमचन्द के साहित्य में मिलता है उतना और उस रूप में शायद ही किसी अन्य हिन्दी लेखक के साहित्य में। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दलित साहित्य जितना सुव्यवस्थित रूप में मराठी साहित्य में विकसित हुआ उतना अन्य भारतीय साहित्य में नहीं, किंतु यह पूरा सत्य नहीं है कि दलित साहित्य की अवधारणा का प्रादुर्भाव मराठी साहित्य में सर्वप्रथम हुआ। इसका सत्यापन श्री भगवान दास भी नहीं करते। उनके अनुसार यह धारणा गलत है कि दलित साहित्य पहले मराठी में आया। वे मानते हैं कि पंजाबी में सबसे पहले दलित साहित्य लिखा गया फिर हिंदी में, तब कहीं मराठी में आया। वैसे यह प्रश्न यहाँ बहुत प्रासंगिक भी नहीं है। यहाँ तो हिंदी दलित कविता का संदर्भ महत्वपूर्ण है। हिन्दी में दलित जीवन पर छिटपुट रूप में ही सही, लिखा जाता रहा है। वैसे वह अवांतर प्रसंग ही रहा हो लेकिन कविता के मानवतावादी आग्रहों के कारण दबे-कुचले, दलित-पीड़ित, शोषित, सर्वहारा कविता के विषय बनते रहे हैं। हिंदी साहित्य में प्रगतिशीलता की धारा का वेग बढ़ने के साथ कविता की चिंता के केन्द्र में दलित आने लगे। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दलित चेतना में विकास हुआ। इन्होंने अपने को जाना, अपनी शक्ति का इन्हें अहसास हुआ। इनमें शोषण के विरुद्ध आक्रोश जन्मा। कुछ करने और होने की अदम्य लालसा पैदा हुई। हर क्षेत्र में अफरातफरी मची। साहित्य इससे अछूता कैसे रहता। स्वतंत्रता के बाद मराठी में दलित

साहित्य पूरे उफान के साथ उभरा। उसने अपनी ओर पूरे देश का ध्यान आकृष्ट किया। आकृष्ट करने का कारण था उनके साहित्य में आया उनका बेचैन कर देने वाला जीवन-यथार्थ, जो बेहद अमानवीय था।

यहीं बार-बार उठाया जाने वाला प्रश्न सामने आ जाता है कि हिन्दी में दलित साहित्य क्यों नहीं लिखा गया या उसकी शुरुआत देर से क्यों हुई? कुछ लोग मानते हैं कि ऐसा दलित आंदोलन और दलित-चेतना के अभाव में हुआ। इसमें आंशिक सत्य है या हो सकता है। किंतु इसका दूसरा पहलू भी है। एक तो हिंदी भाषी क्षेत्रों में दलितों में शिक्षा नहीं के बराबर थी। स्वतंत्रता के बाद जब छिटफुट रूप में शिक्षा का सिलसिला शुरू हुआ, दलितों में थोड़ी चेतना आयी। अब इनकी पहली प्राथमिकता थी समाज में प्रतिष्ठित होने की। उनके मन की यह आदिम आकांक्षा थी। समाज में वे उसी स्थिति में प्रतिष्ठित हो सकते थे जब उनकी सत्ता और प्रशासन में सीधी हिस्सेदारी हो। और वे एकांत भाव से उसी ओर उन्मुख हो गये। साहित्य, कला, कविता उनके लिए आपद्धर्म नहीं थी। मध्यकाल में निर्गुणियाँ संतों और कवियों, जिनमें दलित जातियों की बड़ी संख्या थी, की भिन्न स्थिति थी। साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में समान रूप से उनकी सहभागिता थी। इनकी अपनी पहचान थी। उनके पीछे संस्कृति कर्म से जुड़े लोगों की जमात थी। यही कारण है कि वे बेलौस ढंग से अपनी बातें कहते थे, विरूप स्थितियों पर बेझिझक चोट करते थे।

स्वतंत्रता के बहुत बाद हिन्दी में दलित कविता की शुरुआत हुई। हिंदी में दलितों के लिए कविता तो कुछ पहले शुरू हुई, किन्तु दलितों की कविता और दलितों के द्वारा कविता की शुरुआत अभी हाल की बात है। लेकिन दलित कवियों ने हिंदी कविता के परिसर में अपनी उपस्थिति नये तेवर के साथ दर्ज करायी है। अपनी ओर लोगों का ध्यान खींचा है। यह दीगर बात है कि वे इनके प्रति थोड़े अनमना रुख दिखा रहे हैं। उनकी कविता को कविता का विसंवादी स्वर मानकर उपेक्षित करने की चेष्टा कर रहे हैं लेकिन अपने ध्यान से हटा देने की सुविधा उन्हें प्राप्त नहीं है। यह उनकी लाचारी है और यही इन दलित कवियों की सिद्धि और सार्थकता है।

दलित कविता में कवियों का एक प्रबुद्ध वर्ग उभर कर आया है। ये अपने वर्ग/वर्ण की लाचारियों की चिंता ही नहीं करते, कविता भी इनकी चिंता का विषय है। इनके लिए कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा, गतिशीलता की संवाहक है जिसमें इनकी पीड़ा, सुख-दुःख अभिव्यक्त होता है। कविता इन्हें जीवन की विद्रूपताओं से जूझने का हौसला देती है। दलित कविता विरोध और

नकार की ही कविता नहीं वह आदमी की पहचान की कविता भी है। एक दलित कवि के लिए 'कविता कार्बनडायऑक्साइड के विरुद्ध आक्सीजन के लिए युद्धरत हथियार है।' यह अँधेरे के लिए अग्नि चुरा लाने की प्रक्रिया है। दलित कवि कविता के लिए कविता नहीं लिखता। कविता मुक्त करती है। वह इसी मुक्ति के लिए कविता लिखता है। उसकी सांसों पर जो कर्ज है, दबाव है उसी को उतारने का वायस है कविता। यह कविता एकांत में रोने के बजाय चीखने और प्रतिकार करने का विश्वास है।

ये उनकी कविताएँ हैं जिनका यह भोग और संताप है। ये अपना सलीब आप तो ढोते ही हैं, साथ ही कीलित जोड़ों से रिस रहे हर रक्त शिराओं को खरोंचती हुई निकली हैं। अभिव्यक्ति में सहज होने पर भी इनका तासीर उत्तेजक है। ये आवेग और आवेश की कविताएँ हैं। ज्वलनशीलता इन कविताओं का गुण धर्म है। ये तेजाब में भिगोयी कविताएँ हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए जबान जलती है, आँखें सुर्ख हो जाती हैं, मन संताप से भर आता है, सब कुछ नोच-चोथ देने की तबीयत होती है। मनुष्यता को हजारों हजार सालों से जिस तरह कीलित रहना पड़ा, उनके अतीत, वर्तमान और आगामी काल को अंधकार से भर दिया गया था। सारी मानवीय संभावनाएँ छीन ली गयी थीं। उन्हें ही खोज लाने वाले ये अग्निधर्मी कवि हैं।

दलित चेतना के कवि स्मृतियों के कवि हैं। इनकी कविताओं में इनके पुरखों के लहलुहान अतीत स्मृतियों में उभर कर इन्हें बेचैन करते हैं। ये स्मृतियाँ इनके कलेजे को रफ़ता-रफ़ता पाचती रहती हैं। क्षण मात्र के लिए चैन नहीं लेने देतीं। यही स्मृतियाँ इन्हें कुछ कर गुजरने, उन जैसों की नियति बदलने के लिए उकसाती रहती हैं। 'मुट्ठी भर चावल' 'बस्स! बहुत हो चुका' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'शुक्र मनाओ' (शरद कोकास), 'शब्द' (मोहन दास नैमिशराय), 'सिसकता आत्मसम्मान' (सी.बी.भारती) आदि कविताओं में स्मृतियों के दिए जलते रहते हैं।

ये कवि उस वर्ग की उन पीड़ाओं और टीसों से साधारणीकृत करना चाहते हैं जिनसे ये हजारों वर्ष से गुजर रहे हैं। ज्ञान के आलोक से दूर, सम्पत्ति से वंचित, अधिकारविहीन, लुटे-पिटे, भूखे, शीत-ताप से संतप्त, विधि-निषेध, दासता, प्रताड़नाओं से दग्ध जीवन यदि सुविधाभोगी वर्ग को जीना पड़े तो कैसा लगेगा?

'यदि तुम्हारी बहन बेटियों को/ सर्वथा निर्वस्त्र कर / घुमाया जाए, / गली-गली नचाया जाए / कसे जाएँ गन्दे फिकरे / किया जाए बलात्कार/ सड़कों-चौराहों पर / सामने तुम्हारे / तब तुम्हें कैसा लगेगा?' (एन. आर. सागर,

‘तब तुम्हें कैसा लगेगा?)

ये स्मृतियाँ दलित कवियों के मन में प्रतिकार के लिए सन्नद्ध करती हैं। ये उस सबको तहस-नहस कर देना चाहते हैं जो इनकी खुशियों के एवज में प्राप्त हुए हैं। इन कवियों ने एक नयी इतिहास-दृष्टि विकसित की है। यह कोई शून्य में विकसित नहीं हुई है। इसके पीछे इनका लम्बे समय का इतिहास-बोध है। अनुभव का प्राप्य। निरन्तर यातना, समय का ताप, इतिहास के दबाव झेलने पड़े हैं। इन्हीं से इतिहास-दृष्टि का आँजन प्राप्त हुआ है। शास्त्र-निर्माता भारतीय सामंत वर्ग के हितों के पोषक रहे हैं। उनकी सुरक्षा के लिए वे व्यवस्थाएँ देते रहे हैं। उनके लिए फर्जी इतिहास की उपलब्धियों और मान्यताओं को तोड़ते-मरोड़ते रहे हैं। नयी राहों को मिटाते रहे हैं। अब स्थिति बदल गई है। दलित कवि इतिहास में नये सिरे से प्रवेश कर रहा है। उनका विश्लेषण सही परिप्रेक्ष्य में कर रहा है। उनमें नये अर्थ भर रहा है, नये पहलू तलाश रहा है।

‘शम्बूक/हम जानते हैं तुम इतिहास पुरुष नहीं हो/ वरना कोई लिख देता/ तुम्हें भी पूर्वजन्म का ब्राह्मण’ (डॉ. एन. सिंह, ‘शम्बूक’) मगर शम्बूक इतिहास का एक सच है ‘लेकिन शम्बूक/ तुम इतिहास का सच हो/ राजतंत्रों में जानती/ असंख्य दलित चेतनाओं का प्रतीक/ व्यवस्था और मानव के संघर्ष का बिंब।’ (वही) कवि का मानना है कि शम्बूक की हत्या इसलिए नहीं हुई कि वह उल्टा लटक कर तपस्या कर रहा था बल्कि उसकी तपस्या एक आंदोलन थी जो व्यवस्था को पलट रही थी। दलित कवि आदिकवि की इस प्रतिपत्ति से भी असहमत हैं कि शम्बूक को सदेह स्वर्ग जाने की कामना थी। वास्तविकता तो यह थी कि ‘तुम अभिव्यक्ति दे रहे थे/ राज्याश्रित अध्यात्म में उपेक्षित देह के यथार्थ को।’ (वही) वस्तुतः शम्बूक राजतंत्र में सार्थक हस्तक्षेप कर रहा था।

रमणिका गुप्ता की कविता ‘स्पार्क्टस’ भी विरोध की कविता है। स्पार्क्टस गुलाम होते हुए भी विरोध और विद्रोह का प्रतीक बन जाता है। वह रोम के गुलामों को ही नहीं विश्व के गुलामों को मरकर भी शोषण के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता है

‘रोम धर्रा गया/स्पार्क्टस के उन सपनों से/जिसने हजारों गुलामों के सीने में/भर दिए थे आजादी के सपने/जिसने जगा दी भूख/कि जिसे पेट में पाले/सीने में भरे / लटक गये हजारों गुलाम / टिकटिकी पर।’ (रमणिका गुप्ता, ‘स्पार्क्टस’)

दलित कविता में नकार और वहिष्कार के स्वर प्रखर हैं। ये मनुवाद, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, वर्णवाद, वंशवाद, पूंजीवाद, फासीवाद को नकारते और उसकी व्याख्या करते हैं क्योंकि इन सलीवों पर ये बार-बार लटके हैं और अब उन्हें

लटकाना चाहते हैं, जो उन्हें लटकाते रहे हैं। दलित कवि लोकतंत्र विरोधी साहित्य का भी विरोधी है। यह ईश्वर के अस्तित्व को भी नकारता है, 'क्योंकि ईश्वर एक मिथ्या विश्वास है।' यह सड़ी-गली परम्पराओं को भी मिट्टी के नीचे गहरे में दबा देने की बात करता है। इनमें नयी चेतना आयी है। यह चेतना व्यक्तिगत ही नहीं सामूहिक है 'चाहे इसकी हो या उसकी, मार-मार ही होती है/नहीं सहेंगे, वार करेंगे, अब मेरी बस्ती के लोग।' (डॉ. एन.सिंह, गजल)।

दलित कविता की कविताएँ अपने नकार, विद्रोह, घृणा और अग्निधर्मिता के लिए ही अपनी पहचान नहीं रखतीं, इसमें मानवीय संवेदना भी है। दलितों ने अपने श्रम और खून-पसीने से विश्व सभ्यता और संस्कृति को सजाया-संवारा, पाला-पोसा है। सारी सुखियों में इनके खून की सुखी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'वह मैं हूँ' कविता में यह सुखी इन्द्रधनुषी रूप में अभिव्यक्त हुई है 'मुँहअँधेरे बुहारी गयी सड़क में / जो चमक है /वह मैं हूँ'...'पेड़ों में नदी का जल/ धूप-हवा में श्रमिक शोषित गंध / बाढ़ में बह गयी झोपड़ी का दर्द / सूखे में दरकती धरती का बाँझपन / वह मैं हूँ / वह मैं हूँ!!'

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की 'कौन हैं हम तुम' और ठाकुर दास 'सिख' की 'बात ठाकुर की' कविताएँ कई कारणों से इस संग्रह को कविताओं में नए आस्वाद की कविताएँ हैं। अपने रूप-विधान की दृष्टि से भी ये कविताएँ अलग किस्म की हैं। इन कविताओं में पीड़ा के कितने तार एक साथ मद्धमसुर में बज उठते हैं जो देर तक चेतना के स्तर पर गूँजते हैं। अनुगूँज फैलती-पसरती जाती है, अर्थछवियाँ खुलती जाती हैं।

दलित कवि ने अपने वर्ग के दलितों के लिए सुविधा प्राप्त वर्ग से जीने के निमित्त चुटकी भर राहत चाही थी, नहीं मिली। ओमप्रकाश मेहरा की कविता 'आकाश' का आकाश सुविधाजीवी वर्ग का प्रतीक है। उसे संबोधित कर कवि कहता है 'मैंने तुमसे तुम्हारी न ऊँचाई माँगी थी, न तुम्हारा विस्तार / मैंने सिर्फ तुम्हारे एक छोटे से टुकड़े के नीचे / माँगी थी, अपने सर के लिए छत। आज वह सबसे जवाबतलब कर रहा है जिन्होंने उसे निराश किया था 'आज तुम सबसे जवाब माँगता हूँ / ओ आकाश, ओ धरती, ओ नदी, ओ हवा, ओ तितली / जरूरत भर भी / छत, जीवन का टुकड़ा सांस भर हवा, प्यास भर पानी / और बस जरा से रंग / तमाम उम्र क्यों न मिले?'

दलित कविता के कितने ही रंग-रूप हैं। विचारों की स्पष्टता, अनुभव की प्रामाणिकता, संवेदना की सहजता और नये मिजाज के कारण कविता की पहचान बदल रही है।

हिन्दी दलित कवियों की काव्यभाषा और शिल्प-विधान पर चर्चा करने का अभी समय नहीं आया है। अभी तो धारा पहाड़ से उतर रही है पूरे आवेग से। बाढ़ की स्थिति है पानी मटमैला है। यह उद्दाम प्रवहनशीलता की पहचान है। यह सब कुछ बहाकर ले जायेगी अपने साथ तब सड़ेगी, गलेगी, फिर थिरायेगी, मिट्टी नीचे बैठेगी, नयी उर्वराशक्ति आएगी, नया जीवन रूप लेगा। तब कविता की रूप-रचना की चिन्ता करने का समय आएगा। अभी तो हाहाकार कविता की भूमिका में है। दलित कवि भी कविता की यांत्रिकी को तत्काल जाने-अनजाने नकारता है। संभवतः इसलिए कि इनका पहला जोर अपनी ये रूप-रचना के प्रति थोड़े लापरवाह हैं। बावजूद इसके इनकी कविता का रूप पक्ष इतना कमजोर या उपेक्षणीय नहीं है। संवेदना अभिव्यक्ति के क्रम में अपने साथ भाषा और रूप-रचना के सारे औजार लेकर आती है। इन कवियों की कविताओं में भी रूप-विधान के सारे तत्त्व आ गए हैं। इन पर ब्योरे में विचार करना यहाँ जरूरी नहीं है।

यहाँ छपे ये कैसे कवि नहीं हैं जिन्होंने 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ'। इनमें अधिकांश उच्च शिक्षा प्राप्त और अधीत हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में बिंब, प्रतीक, संकेत, विशेषण, विपर्यय और मिथकों का जितना और जैसा प्रयोग किया है वे इनके अधीत होने का साक्ष्य देते हैं। दलित कविता प्रतीकों के माध्यम से अधिक अर्थ संवहन करती है। इससे शोषण की ऐतिहासिकता और परम्परा भी स्पष्ट होती है। दलित कवि प्रतीकों और मिथकों को कारगर और प्रयोजन के अनुरूप प्रयोग करते हैं। आम तौर पर ये प्रतीक बार-बार कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं शम्बूक, राम, सीता, एकलव्य, प्रमथ्यु, स्पावर्टस, द्युपितर, द्रोणाचार्य, कृष्ण, अर्जुन, अभिमन्यु, तक्षक, नाग, पुष्यमित्र, पन्ना धाय, बृहद्रथ, शशांक, जयचन्द, रैदास, कबीर, कालीदह, बोधिवृक्ष आदि। मिथकों के सार्थक प्रयोग भी हुए हैं।

इस कवियों की भाषा किसी की मुहताज नहीं है। इनका विश्वास है कि ये कविताएँ जिन्दा रहेंगी तो अपने वैचारिक सरोकारों के कारण। यह सही है। ये जानते हैं कि भाषा बात कहने का माध्यम है। ये जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसके माध्यम से अपनी बातें, अपने विचार, अपना संदेश, क्षोभ, क्रोध, राग-विराग, पीड़ा, अपने कार्य-क्रम सम्प्रेषित करने में समर्थ हैं। ये आक्रोश की भाषा का प्रयोग करते हैं, तो भाषा का आक्रोश भी देखने में आता है। ऐसी भाषा का प्रयोग भी करते हैं, जिससे कुछ लोगों को ऐतराज हो सकता है और उन्हें जुगुप्सा का बोध भी हो सकता है, किन्तु ऐसी भाषा अकारण नहीं आती है, इसका कोई न कोई तार्किक संदर्भ होता है।

अनुक्रम

हीरा डोम	13
ओम प्रकाश वाल्मीकि	15
डॉ. एन. सिंह	25
कंवल भारती	29
एन.आर. सागर	35
रामभरत पासी	39
शरद कोकास	44
बाबूलाल मधुकर	49
मोहन दास नैमिशराय	54
लालचन्द राही	57
ओम प्रकाश मेहरा	61
भागीरथ मेघवाल	65
सुशीला टाकभौरे	70
निशान्त	78
ओमप्रकाश कृत्यांश	80
हरकिशन सन्तोषी	82
सी.बी. भारती	87
कुसुम मेघवाल	93
दयानन्द 'बटोही'	95
राजमणि मांझी 'मकरम'	101
पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	103
रवीन्द्र भारती	111

ठाकुर दास 'सिद्ध'	112
लक्ष्मी नारायण सुधाकर	114
जयप्रकाश कर्दम	119
डॉ. प्रेमशंकर	125
रत्नेश कुमार	131
हेमन्त प्रसाद 'दीक्षित'	136
श्यामलाल शर्मा	138
चंद्र कुमार वरठे	140
नीरा परमार	143
रामलखन पाल	146
सोहनपाल सुमनाक्षर	147
रमणिका गुप्ता	150
सूरजपाल चौहान	161
प्रभाकर गजभिये	169
पारसनाथ	174
एन. मनोहर प्रसाद	179
असंगघोष	187
कुसुम वियोगी	189
गंगाराम परमार	191

हीरा डोम

अछूत की शिकायत

(सितम्बर 1914 को 'सरस्वती' में पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई। यह भोजपुरी में है और सम्भवतः उस भाषा में लिखी हुई यह एकमात्र कविता है जो द्विवेदी जी की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। यह कविता उनके पास भेजी गई थी क्योंकि कविता के ऊपर कोष्टक में छपा है 'प्राप्त'।)

हमनी के राति दिन दुःखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाईबि।
हमनी के दुःख भगवनओं न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।
पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजां,
बेधरम होके रंगरेज बनी जाइबि।
हाय राम! धरम न छोड़त बनत बाजे,
बेधरम होके कैसे मुँहवा देखाइबि।।

खंभवा के फारि पहलाद के बंचवले जां,
ग्राह के मुँहे से गजराज के बचवले।
धोती जुरजोधना कै भइआ छोरत रहै,
परगट होके तहाँ कपड़ा बढवले।
मरले रवनवां के पलले भभिखना के,
कानी अंगुरी पै धैके पथरा उठवले।
कहंवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब,
डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।।

हमनी के राति दिन मेहनत करीलेजां,
दुइगो रुपयवा दरमाह में पाइबि।
ठकुरे के सुखसेत घर में सुतल बानीं,
हमनी के जोति-जोति खेतिया कमाइबि।
हकिमे कै लसकरि उतरल बानी,
जेत उहओं बेगरिया में पकरल जाइबि।
मुँह बान्हि ऐसन नोकरिया करत बानी,
ई कुलि खबरि सरकार के सुनाइबि। 3।

बभने के लेखे हम भिखया न माँगबजां,
ठकुरे के लेखे नहि लउरी चलाइबि।
सहुआ के लेखे नहि गइया चोराइबि। (चराइबि?)
भटऊ के लेखे न कवित्त हम जोरबजां,
पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइबि।
अपने पसिनवा के पइसा कमाइबजां,
घर भर मिलि जुनी बाँटि चोंटि खाइबि। 4।

हड़वा मसुइया कै देहियाँ है हमनी कै,
औकरै के देहियाँ बभनओं कै बानी।
ओकरा कै घरे-घरे पुजवा होखत बाजे,
सगरै इलकवा भइलैं जजमानी
हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलेजां,
पांके में से भरि-भरि पिअतानी पानी।
पनही से पिटि-पिटि हाथ गोड़ तुड़ि दैलैं,
हमनी के एतनी काही के हलकानी?। 5।

ओमप्रकाश वाल्मीकि

वह मैं हूँ!

मुँह-अँधेरे बुहारी गयी सड़क में
जो चमक है
वह मैं हूँ
कुशल हाथों से तराशे खिलौने देखकर
पुलकित होते हैं बच्चे
बच्चे के चेहरे पर जो पुलक है
वह मैं हूँ
खेत की माटी में
उगते अन्न की खुशबू
मैं हूँ
जिसे झाड़-पोंछ कर भेज देते हैं वे
उनके घरों में
भूलकर अपने घरों के
भूख से बिलबिलाते बच्चों का रूदन
रूदन में जो भूख है
वह मैं हूँ
प्रताड़ित-शोषित जनों के क्षत-विक्षत चेहरों पर
घावों की तरह चिपके हैं संताप भरे दिन
उन चेहरों में शेष बची हैं
जो उम्मीदें अभी
वह मैं हूँ
पेड़ों में नदी का जल

धूप-हवा में श्रमिक शोषित गंध
बाढ़ में बह गयी झोपड़ी का दर्द
सूखे में दरकती धरती का बाँझपन
वह मैं हूँ
वह मैं हूँ!!

मुट्ठी भर चावल

अरे, मेरे प्रताड़ित पुरखो
तुम्हारी स्मृतियाँ
इस बंजर धरती के सीने पर
अभी जिन्दा हैं
अपने हरेपन के साथ

तुम्हारी पीठ पर
चोट के नीले गहरे निशान
तुम्हारे साहस और धैर्य को
भुला नहीं पाये हैं अभी तक

सख्त हाथों पर पड़ी खरोंचें
रिसते लहू के साथ
विरासत में दे गयी हैं
ढेर-सी यातनाएँ
जो उगानी है मुझे इस धरती पर
हरे-नीले-लाल फूलों में

बस्तियों से खदेड़े गये
ओ, मेरे पुरखो
तुम चुप रहे उन रातों में
जब तुम्हें प्रेम करना था

आलिंगन में बांधकर
अपनी पत्नियों को

तुम तलाशते रहे
मुट्ठी भर चावल
सपने गिरवी रखकर

ओ, मेरे अज्ञात अनाम पुरखो
तुम्हारे मूक शब्द जल रहे हैं
दहकती राख की तरह
राख : जो लगातार काँप रही है
रोष में भरी हुई
मैं जानना...चाहता हूँ
तुम्हारी गंध...
तुम्हारे शब्द...
तुम्हारा भय...

जो तमाम हवाओं के बीच भी
जल रहे हैं
दीये की तरह युगों-युगों से!

अखाड़े की माटी

कुश्ती कोई भी लड़े
ढोल बजाता है सिमरू ही
जिसके सधे हाथ
भर देते हैं जोश पूरे दंगल में
उछलने लगती है मिट्टी अखाड़े की
ताक धिना-धिना...ताक धिना-धिना
झाँकने लगते हैं लोग

एक दूसरे के कंधों के ऊपर से
उचक-उचक कर

बहुत गहरा है रिश्ता
सिमरू और ढोल का
जैसे साँस और धड़कन का

ढोल खामोश है
तो खामोश है
अखाड़े की माटी

खामोश ढोल को
जनायेंगे हाथ सिमरू के
ढोल बजेगा
जागेगा अखाड़ा
जागेगी माटी अखाड़े की
माटी ही तो है
जो स्वीकारती है सभी को
अच्छे हों या बुरे
हर रूप में!!

बस्स! बहुत हो चुका

जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी
कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ

जो फैले हैं इस धरती पर
ठंडे रेतकणों की तरह
वे तमाम वर्ष
वृत्ताकार होकर घूमते हैं
करते हैं छलनी लगातार
उंगलियों और हथेलियों को
नस-नस में समा जाता है ठंडा-ताप

झाड़ू थामे हाथों की सरसराहट
साफ सुनायी पड़ती है भीड़ के बीच
बियाबान जंगल में सनसनाती हवा की तरह
गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मूक पीड़ाएँ
कसमसा रही हैं
मुखर होने के लिए
रोष से भरी हुई

बस्स,
बहुत हो चुका चुप रहना
निरर्थक पड़े पत्थर
अब काम आयेंगे
संतप्त जनों के!!

वंशज

दीवार बनकर खड़े हैं दुख
चुभते हैं विषैले शूल की तरह
रिश्ता है लहू जल प्रपात सा
थकी-हारी देह से
'नियति' के बहाने

अच्छा प्रपंच रचा है तुमने
जखों से पटे चेहरे
अब पहचाने नहीं जाते
अरे, अब तो मान लो
किस सभ्यता के वंशज हो तुम!

कभी सोचा है?

तुम महान् हो
तुम्हारी जिह्वा से निकला हर शब्द पवित्र है
मान बैठा था मैं
तुमने पढ़ रखी हैं ढेरों पुस्तकें
आता है दोहराना शब्दों को
बदलना अर्थों को
सहिष्णुता तुम्हारी पहचान है
वर्ण-व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श
खुश हो जाते हो
साम्यवाद की हार पर
जब टूटता है रूस
तो तुम्हारा सीना 36 हो जाता है
क्योंकि मार्क्सवादियों ने
बना दिया है छिनाल
तुम्हारी संस्कृति को
हाँ सचमुच तुम सहिष्णु हो
जब दंगों में मारे जाते हैं
अब्दुल और कासिम
कल्लू और बिरजू
तब तुम सत्यनारायण की कथा सुनते हुए
भूल जाते हो अखबार पढ़ना
पूजते हो

गाँधी के हत्यारे को
तोड़ते हो इबादतगाह झुंड बनाकर

कभी सोचा है,
गंदे नाले के किनारे बसे
वर्ण व्यवस्था के मारे लोग
इस तरह क्यों जीते हैं?
तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें
कभी सोचा है?

जाति

(1)
मैंने भी देखे हैं यहाँ
हर रोज
अलग-अलग चेहरे
रंग-रूप में अलग
बोली-बानी में अलग
नहीं पहचानी जा सकती उनकी 'जाति'
बिना पूछे
मैदान में होगा जब जलसा
आदमी से जुड़ कर आदमी
जुटेगी भीड़
तब कौन बता पायेगा
भीड़ की 'जाति'
भीड़ की जाति पूछना
वैसा ही है
जैसे नदी के बहाव को रोकना
समन्दर में जाने से!!

(2)

‘जाति’ आदिम सभ्यता का
नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को
कर देता है छलनी
एक तुम हो
जो अभी तक इस ‘मादरचोद’ जाति से चिपके हो
न जाने किस हरामजादे ने
तुम्हारे गले में
डाल दिया है जाति का फंदा
जो न तुम्हें जीने देता है
न हमें!

(3)

लुटेरे लूट कर जा चुके हैं
कुछ लूटने की तैयारी में हैं
मैं पूछता हूँ
क्या उनकी जाति तुम से ऊँची हैं!

(4)

ऐसी जिन्दगी किस काम की
जो सिर्फ घृणा पर टिकी हो
कायरपन की हद तक
पत्थर बरसाये
कमजोर पड़ोसी की छत पर।

रोशनी के उस पार

रोशनी के उस पार
खुली चौड़ी सड़क से दूर

शहर के किनारे
गंदे नाले के पास
जहाँ हवा बोझिल है
और मकान छोटे हैं
परस्पर सटे हुए
पतली वक्र-रेखाओं-सी गलियाँ
जहाँ खो जाती हैं चुपचाप
बन जाती हैं
सपनों की कब्रगाह
भूख की अँधेरी गुफाएँ
नंग-धड़ंग घूमते बच्चों की आँखों में

अँधेरे-उजाले के बीच
गुप्त संधि के बाद
गली के खंबों पर रोशनी नहीं उगती
पानी नहीं आता नल में
सूँ-सूँ की आवाज के बाद भी
रह जाती है सीमित
अखबार की सुर्खियों तक
विश्व बैंक की धन राशि

रोशनी के उस पार
जहाँ आदमी मात्र एक यूनिट है
राशन कार्ड पर चढ़ा हुआ
या फिर कागज का एक टुकड़ा
जिसे मतपेटी में डालते ही
हो जाता है वह अपाहिज
और दुबक रहने के लिए अभिशप्त भी
रोशनी के उस पार
जहाँ सूरज डूबता है हर रोज

लेकिन कभी उगता नहीं है
भूले-भटके भी
जहाँ रात की स्याही
दबोच लेती है कालिख बन कर
परस्पर सटे और अँधेरे में डूबे
मकानों को!

विध्वंस बन कर खड़ी होगी नफरत

तुमने बना लिया
जिस नफरत को अपना कवच
विध्वंस बनकर खड़ी होगी रूबरू एक दिन
तब नहीं बचेंगी शेष
आले में सहेज कर रखी बासी रोटियाँ
पूजाघरों में/अगरबत्तियाँ, धूप और नैवेद्य
नहीं सुन पाओगे
बच्चों का खिलखिलाना
चिड़ियों का चहचहाना
बन जायेगा फांसी का फंदा
गले में लिपटा कच्चा धागा
ढूँढ लो कोई ऐसा शंख/जिसकी ध्वनि पी सके इस जहर को
या फिर कोई मणि
जो बचा सके
नागिन-सी फुकारती नफरत से
तमाम आस्थाओं और नैतिकताओं की रस्सी बनाकर
जरूरी हो गया है सागर-मंथन
विध्वंस बनकर खड़ी होगी एक दिन नफरत
तुम्हारे दरवाजे पर
जहाँ तुमने उकेर रखे हैं शुभ चिन्ह
अपशकुन से बचने के लिए!

डॉ. एन. सिंह

ये वही हैं

समरसता की
रामनामी ओढ़कर
वे फिर आ गए हैं
अब तुम्हें ही तय करना है कि
यह मनुवादी समरसता
कहाँ ले जाएगी तुम्हें?
गाय की पूँछ पकड़कर
घर में घुस आए
कसाई की
सजा तुम्हें ही तय करनी है
पहचानो
कहीं ये वे ही तो नहीं हैं
जो शम्बूक की हत्या करते और कराते हैं
मन्दिर के द्वार बन्द करते हैं
अनावृतमूर्ति को गंगाजल से धोते हैं
घर और गाँव जलाते हैं
गाँव में नंगा घुमाते हैं
नारायणपुर, बेलछी और पिपरा के अपराधी
कहीं ये ही तो नहीं हैं

भूल की सजा
कभी-कभी बहुत भयानक होती है

गले लगाने की साजिश को समझो
भूलो मत कि
ये वही हैं।

आओ साथ बढ़ें

दुकान हमारी भी है
और तुम्हारी भी
ये बात और है कि
हमारी दुकान पर बिकता है
जूता
और तुम्हारी दुकान पर
रामनामी
हमारे लिए जूते का महत्व
वही है
तुम्हारे लिए जो है रामनामी का
आओ समानता का
यह तार पकड़ें
एकता के सूत्र गढ़ें
साथ बढ़ें!

चार गजलें

(एक)

धीरे-धीरे जाग रहे हैं अब मेरी बस्ती के लोग।
रामराज झूठा सपना था, जान गए बस्ती के लोग॥
बेईमान तो लूट रहे थे, कुछ ईमानदार बनकर छलते।
दोनों एक हैं समझ गए हैं, अब मेरी बस्ती के लोग॥
चाहे इसकी हो या उसकी, मार-मार ही होती है।
नहीं सहेंगे, वार करेंगे, अब मेरी बस्ती के लोग॥

कमजोर हाथ में आ जाने से लाठी भी ताकत खोती है।
अपनी गलती जान रहे हैं, अब मेरी बस्ती के लोग॥
शांतिवन से राजघाट तक, हर रंग के कसमे-वायदे हैं।
झूठ-सत्य में भेद समझते, अब मेरी बस्ती के लोग॥

(दो)

धरती पर सब ठीक-ठाक है, पर हलचल अखबारों में।
बुद्धि कैसे बिकती है, देखो भरे बजारों में॥
सदियों तप कर-करके तुमने घृणित अर्थों को शब्द दिए।
वही शब्द तो बदले हैं, अब शब्दों से हथियारों में॥
आहत अहं नकार रहा है, परिवर्तन की आँधी को।
कुछ बदला है, वे कहते हैं, लेकिन महज इशारों में॥
वे सिर जोड़े सोच रहे हैं, बालू की दीवार बने।
या फिर कैसे छेद बने, उन मजबूत किनारों में॥
नादान नहीं अपमानित जन, उसने शत्रु पहचान लिया
अब सजदा वह नहीं करेगा, धर्मों के दरबारों में॥

(तीन)

कैसे-कैसे सितम हुए हैं आकर देख नजारा तू।
घर फूँके अस्मत लूटी हैं, दीनों का हत्यारा तू॥
हमें बचाओ इन भक्तों से आपस में लड़वाते हैं।
कैसा मन्दिर किसकी मस्जिद, कुर्सी का बँटवारा तू॥
धूल धरम की झोंक रहे हैं, ये जनता की आँखों में।
इन अंधों को राह दिखा दे, कर भी एक इशारा तू॥
हर धड़कन को ये बेचेंगे, साँसों के व्यापारी हैं।
फिर तुमको कैसे छोड़ेंगे, उनका राज दुलारा तू।
बहुत सहा है, नहीं सहेंगे, लड़ना है निर्णायक युद्ध।
इनको छोड़ बीच से हट जा, कर ले जरा किनारा तू॥

(चार)

बहस की बर्छियों पर टाँगकर, समस्याओं को मत उछालो।
शब्द क्या पान है कि मुँह में रखो और धीरे से चबा लो॥
बिन कर्म के शब्द जो निजधार खो कुंठित हुए उन्हें धार दो
सुनो! हर शब्द एक तीर है, इसे अर्थ के विष में बुझा लो॥
देखो पाँचाली के चीर को, फिर दुशासन खींचता है।
अपनी अस्मत को इन बदचलन रहनुमाओं से बचा लो॥
तुम ख्यालों के दीये की रोशनी में लिख रहे अंधी इबारत।
बाँटनी है रोशनी तो, अपने हाथों में मशालों को उठा लो॥
राह बीहड़ है, भयानक है, यूँ अकेले तय, नहीं होगी सफर।
काफिला बन कर चलो, सो रहे हैं लोग जो, उनको उठा लो॥
कागजों पर खोदते हैं तो कुएँ, सींचते हैं जो हमारी प्यास को।
खोदनी है अब हमें उनकी कबर, हाथ में अपने कुदालें सब उठा लो॥

कंवल भारती

पिंजड़े का द्वार खोल देना

शायद ऐसा हो कि तुम्हारे हृदय में
धधकी हो कोई ज्वाला
भस्म करने की वर्जनाएँ
कि तभी कोई बदली मर्यादा की
बरस गयी होगी
और तुम्हारा अन्तर्मन शीतल हो गया होगा

शायद ऐसा हो
कि तुम्हारी अनुभूति अचानक हो गयी हो मार्मिक
पढ़ या सुनकर कोई दलित हत्याकाण्ड
पीड़ित मनुष्यता का पक्ष
तुम्हारी चेतना का बन गया हो केन्द्रबिन्दु
कि तभी कोई टुकड़ा सुख
जगा गया होगा परम्परा-बोध
और तुम्हारी शिराओं में रक्त थम गया होगा
शायद ऐसा हो कि मन्दिर की दीवारों के बीच
तुम्हारी आस्थाएँ विचलित हो गयी हों
पैदा हुआ हो स्थापना का अस्वीकार
कि तभी अनास्था का कोई अज्ञात भय
समा गया होगा तुम्हारे अन्तस में
और जन्मते ही मर गये होंगे विद्रोह के स्वर

शायद ऐसा हो कि तुम्हारी अन्तरात्मा ने
पिंजड़े में फड़फड़ाते पक्षी की वेदना को समझा हो
खोलना चाहा हो उसकी मुक्ति का द्वार
कि तभी किसी वृद्ध सदस्य ने कहा होगा
यह पिंजड़ा खानदानी है
बरसों बरस से हमारे सम्मान का प्रतीक है
और तुम्हारी अन्तरात्मा सलीब पर टँग गयी होगी
प्रतिष्ठा के प्रश्न पर।
इस शायद और तभी के बीच कोई भावना
बुलबुले की नियति जीती है।
प्रतिरोधों से अविचलित
कोई व्यक्ति चेतना
यदि जन्म ले तुम्हारे भीतर
तो तुम सिर्फ इतना करना
पिंजड़े का द्वार खोल देना।

शम्बूक

शम्बूक
हम जानते हैं तुम इतिहास पुरुष नहीं हो
वरना कोई लिख देता
तुम्हें भी पूर्व जन्म का ब्राह्मण
स्वर्ग की कामना से
राम के हाथों मृत्यु का याचक

लेकिन शम्बूक
तुम इतिहास का सच हो
राजतंत्रों में जन्मती
असंख्य दलित चेतनाओं का प्रतीक
व्यवस्था और मानव के संघर्ष का बिम्ब

शम्बूक

तुम हिन्दुत्व के ज्ञात इतिहास के
किसी भी काल का सच हो सकते हो
शम्बूक जो तुम्हारा नाम नहीं है
क्योंकि तुम घौघा नहीं थे,
घृणा का शब्द है जो दलित चेतना को
व्यवस्था के रक्षकों ने दिया था

शम्बूक (हम जानते हैं)

तुम उलटे होकर तपस्या नहीं कर रहे थे
जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है
तुम्हारी तपस्या एक आन्दोलन थी
जो व्यवस्था को उलट रही थी

शम्बूक (हम जानते हैं)

तुम्हें सदेह स्वर्ग जाने की कामना नहीं थी,
जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है
तुम अभिव्यक्ति दे रहे थे
राज्याश्रित अध्यात्म में उपेक्षित देह के यथार्थ को

शम्बूक (हम जानते हैं)

तुम्हारी तपस्या से
ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था
जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा
मरा था ब्राह्मणवाद
मरा था उसका भवितव्य।

शम्बूक

सिर्फ इसलिये राम ने तुम्हारी हत्या की थी।
तुम्हें मालूम नहीं

जिस मुहूर्त में तुम धराशायी हुए थे
उसी मुहूर्त में जी उठा था
ब्राह्मण-बालक
यानी ब्राह्मणवाद
यानि उसका भवितव्य

शम्बूक
तुम्हें मालूम नहीं
तुम्हारे वध पर
देवताओं ने पुण्य वर्षा की थी
कहा था बहुत ठीक, बहुत ठीक
क्योंकि तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी,
स्वतंत्रता, समानता और न्यायबोध की हत्या थी

किन्तु, शम्बूक
तुम आज भी सच हो
आज भी भी दे रहे हो शहादत
सामाजिक परिवर्तन के यज्ञ में।

बहिष्कार

आइए, इस नये वर्ष में
बहिष्कार करें
ब्राह्मणवाद, सामन्तवाद और
पूँजीवाद का,
इससे जनमे जातिवाद और
फासीवाद का।
बहिष्कार करें उस राजनीति का
जो निभा रही है पुष्यमित्र की भूमिका।

बहिष्कार करें, उस चिन्तन का
जिसके मूल में हिन्दुत्व का पुनरोत्थान
शिवाजी और पेशवा शासन की
स्थापना का लक्ष्य है,
जिनमें अछूतों को कमर में बाँधकर
झाड़ू गले में लटकाकर हांडी
चलने की राज्याज्ञा थी।
बहिष्कार करें उस साहित्य का
जो जन्मा है पुराणों के मिथकों से
जो विरोधी है लोकतंत्र का
समर्थक है राम लला के राज्य का
जो स्वर्ग था द्विजों का
जिसमें शूद्र-अछूतों के विकास
के रास्ते सख्ती से बन्द थे।
बहिष्कार करें उन आलोचकों का
जो समाजवाद के कैप्सूल में
भर रहे हैं ब्राह्मणवाद
जो नववाद की आड़ में
स्थापित कर रहे हैं सामन्ती मूल्य
जो सिद्ध कर रहे हैं
पथभ्रष्टक तुलसीदास को पथ प्रदर्शक
रूढ़िवादी निराला को प्रगतिवाद का जनक
जिन्हें इस देश का पूँजीवाद
बाँट रहा है पुरस्कार
ताकि वे इसी तरह करते रहें / सत्य का संहार।
बहिष्कार करें उस पत्रकारिता का
जो बहुत सूक्ष्म साजिश के तहत
साम्प्रदायिकता और धर्मसापेक्षता
की बनी हुई है संवाहिका
उगल रही है कुछ वर्गों के खिलाफ, जहर

ढा रही है भारत की एकता पर कहर
आइए, इसे नये वर्ष में स्वीकार करें
स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता को
न केवल चिन्तन में / न केवल लेखन में
बल्कि व्यवहार में, / आचरण में, संस्कार में
मनुष्य और देश के विकास के लिये
विघटन के समूल नाश के लिये।

मुक्ति संग्राम अभी जारी है

मैं उस अतीत को
अपने बहुत करीब पाता हूँ
जिसे जिया था तुमने
अपने दृढ़ संकल्प और संघर्ष से।
परिवर्तित किया था समय चक्र को
इस वर्तमान में।

मैं उस अन्धी निशा की
भयानक पीड़ा को/जब भी अहसास करता हूँ
तुम्हारे विचारों के आन्दोलन में
मुखर होता है एक रचनात्मक विप्लव
मेरे रोम-रोम में।

तुम बिल्कुल नहीं मरे हो बाबा।
जीवित हो हमारी चेतना में,
हमारे संकल्प में, हमारे संघर्षों में।
समता, सम्मान और स्वाधीनता के लिए
मुक्ति संग्राम जारी रहेगा/ जब तक कि
हमारे मुरझाये पौधों के हिस्से का सूरज
उग नहीं जाता है।

एन. आर. सागर

तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

यदि तुम्हें ज्ञान के आलोक से दूर
अनपढ़ मूर्ख बनाकर रखा जाए,
धन-सम्पत्ति से कर दिया जाए वंचित
छीन लिए जाएँ अस्त्र-शस्त्र
और विवश किया जाए
हीन-दीन
अधिकारविहीन जीवन जीने को
तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

यदि तुम्हारे खेत-खलिहान,
मकान-दुकान-लूट लिए जाएँ
या जलाकर कर दिए जाएँ खाक
और तुम्हें कर दिया जाए बाध्य
सपरिवार भूख से बिलखने
तन जलाती धूप
तेज मूसलाधार बरसात
या पिंडली कँपकँपाती ठण्ड में
खुले में शरण लेने को
तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

यदि तुम पर लाद दिया जाए
कर्तव्यों का भार

निषेधों प्रतिबन्धों का अम्बार
अवश हो जिनसे
करनी पड़े दासता-बेगार
दिन-रात की हाड़तोड़ मेहनत
और तब बदले में
खाने को दिया जाए बासी जूठन
या दो मुट्ठी सड़ा-गला अनाज
तन ढकने को पुराने बसन-उतरन
ऊपर से डांट-फटकार
भद्दी-अश्लील गालियों की बौछार
लात-घूसों-डण्डों की मार
तब तुम्हें कैसा लगेगा?

अभिलाषा

हाँ-हाँ मैं नकारता हूँ
ईश्वर के अस्तित्व को
संसार के मूल में उसके कृतित्व को
विकास-प्रक्रिया में उसके स्वत्व को
प्रकृति के संचरण नियम में
उसके वर्चस्व को,
क्योंकि ईश्वर एक मिथ्या विश्वास है
एक आकर्षक कल्पना है
अर्द्धविकसित अथवा कलुषित मस्तिष्क की
तब जाग सकता है कैसे
इसके प्रति श्रद्धा का भाव?
सहज लगाव?
फिर भी मैं चाहता हूँ मन्दिर में प्रवेश
और बनना पुजारी

हाँ-हाँ मैं पुजारी बनना चाहता हूँ
देव-दर्शन के लिए नहीं
पूजन-अर्चन के लिए नहीं
केवल जानने के लिए कि
देव-मूर्ति के सान्निध्य में रहकर
एक मानव कैसे बन जाता है
पाषाण-हृदय अमानव?

अपने भोग की सामग्री जोड़ने
जन की श्रद्धा को अपनी ओर मोड़ने
वह धर्म का स्वांग कैसे सजाता है?
सरल का दोहन करने
निर्बल का शोषण करने
कैसे-कैसे कुचक्र चलाता है?
कथित ईश्वर-कृत ग्रंथों के
आधारहीन संदर्भों को
स्वरचित आख्यानो से
कैसे प्रामाणिक ठहराता है?
भोले-भाले-सरल नागरिकों को
अनेकार्थक गूढ़ भाषा-प्रवचन से
मूर्ख कैसे बनाता है?
हाँ-हाँ मैं चाहता हूँ पुजारी बनना
देवालय की चल-अचल सम्पत्ति पर
अधिकार के लिए
और साथ ही एकछत्र स्वामी बनने
ईश्वर की प्रतीक देव-मूर्ति का
बदला चुकाने के लिए
नित्यप्रति अनादर करने के लिए
मुँह पर थूकने के लिए,
जूते लगाने के लिए

और सिर पर पेशाब करने के लिए
सामने उनके
जिन्होंने
धर्म का प्रतिनिधि,
समाज का ठेकेदार बनकर
रखा है मुझे दूर आज तक
मन्दिर की दहलीज तक से
शून्य से उत्पन्न,
अपात्र ठहराकर।

रामभरत पासी

समय रहते

समय रहते दबा दो
मिट्टी में गहरे
उन सड़ी-गली परंपराओं को
बदबू फैलाने से पहले
किसी लाश की तरह

क्योंकि फिर
नहीं झुठला पाओगे तुम
पानी और रेत से भरी
बाल्टी पर लिखे
'आग' जैसे
अपने दामन पर लगे
बदनुमाँ धब्बे को।

बैसाखियाँ

नहीं चाहिए हमें
तुम्हारी बैसाखियाँ
नहीं आना है
तुम्हारे फरेब में अब
सदियों से
करते रहे हो मनमानी

बदले बैसाखियों के
हमारे कांधों को
पहनाते रहे हो
गाड़ी का जुआ
करके सवारी
बरसाते रहे हो चाबुक
क्या
यही है हमारी नियति?
इससे तो अच्छा है
स्वाभिमान के साथ
जमीन पर रेंगना
कम से कम तब
तुम नहीं पहना पाओगे
हमारे कांधों को
गाड़ी का जुआ
नहीं छिन पाओगे
हमारा स्वाभिमान
नहीं कर पाओगे
हमें लहू-लुहान...

इसलिए
हे द्विज श्रेष्ठ
ले जाओ अपनी बैसाखियाँ

अब हमें
खुद तय करनी है
अपनी मंजिल
खुद ही सीखना है
चलना
और जब हम

सीख लेंगे चलना
तब तो
विपरीत हो जाएँगी परिस्थितियाँ
उस वक्त
गाड़ी का जुआ होगा
तुम्हारा कांधों पर
बिलबिलाओगे
चाबुक की पीड़ा से
पाँव दे जायेंगे जवाब
लड़खड़ाओगे
अपनी आत्मा का बोझ भी
नहीं सह पाओगे
तब हे मनु श्रेष्ठ
बहुत काम आएँगी तुम्हारे
ये बैसाखियाँ!

सच

भूख की बगल में
दबी छटपटाती आत्मा को
धीरे-धीरे शरीर से
अलग होते देखा है कभी?
या देखा है उन्हें भी
जो गढ़ते हैं शकुनी के पाँसे
निर्विकार भाव से
तुम
चाहे जो कह लो
चाहे जिस नाम से करके महिमामंडित
बैठा दो आसमान पर
लेकिन इतना जान लो कि

उनकी नग्नता को
नहीं छुपा पायेंगे अब
सदियों से बुने जा रहे शब्दजाल
क्योंकि हमें अब
आ गया है उगाना
सच !

पुल

जब भी उन्हें
पार करना होता है
नदी या नाला
तो जरूरत होती है पुल की
पुल को
मजबूत पाये की
पाये को बलि की
और बलि के लिए मनुष्य की
तब हमें
कीड़े-मकोड़ों की योनि से
निकाल कर झाड़-पोंछ कर बना देते हैं
मनुष्य
और खड़ा कर देते हैं
पहली पंक्ति में!

ठहरा हुआ आदमी

श्रेष्ठता का भ्रम पालने वाले
बना ले चाहे जितनी जमातें
इतना तो तय है
मनुष्य की अब

दो ही जमात हैं
जिन्दा रहने के लिए
किस तरफ जाओगे
फैसला तुम्हें करना है
क्योंकि
हिंसक भीड़ का
अंधा शिकार होता है
ठहरा हुआ आदमी!

शरद कोकास

तुम्हारी नियति

आग आग है
पेट में जली तो कहलाई भूख
दिमाग में पली तो विद्रोह
आँखों से बरसी तो चिनगारी
होंठों से निकली तो गाली
तुमने छिनी रोटी
जिस्म पर चढ़ाया मुलम्मा
कवच पहने
कान बन्द किये
कोशिश की
आग न पहुँचे तुम तक
मगर आग आग है
कब रुकी
पहुँची हाथों तक
मशानी बनी
जले कवच पिघला मुलम्मा
आग में अब पकेगी रोटी
सोने से दमकेंगे चेहरे हमारे
तुम्हारी नियति?

शुक्र मनाओ

वैदिक ऋचाएँ सुनने के आरोप में
मेरे पूर्वजों के कानों में
उंडेला हुआ पिघला गर्म सीसा
जला रहा है मेरी धमनियाँ

उनकी मर्मांतक चीखें
हर रात उड़ा देती हैं मेरी नींद
गर्म सलाखों से दागी गई

उनकी आँखों से टपकता लहू
यक-ब-यक
टपक पड़ता है मेरी आँखों से

जूठी पत्तलों के लिए
कुत्तों से लड़ते हुए
उनके शरीर पर पड़ी खरोंचें
मेरे बदन पर हैं

जो कुछ भी सहा गया
विरासत में मिला है मुझे
तुम्हें भी मिला है विरासत में
वही सब कुछ

रुको
अट्टहास से आसमान मत गुँजाओ
समीकरण बदल रहे हैं अब
गनीमत है उलट नहीं रहे
शुक्र मनाओ!

पेट के लिए

दाने की खोज में
उड़ते हुए पछियों के
थक जाते होंगे पंख
अन्न की तलाश में
भटकती हुई चींटियों के
थक जाते होंगे पाँव
चारा ढूँढती मछलियाँ
तैरते-तैरते
थक जाती होंगी
थक जाते होंगे कीट पतंगे
थक जाती होंगी छिपकलियाँ
थक ही जाता होगा
रोटी की जुगाड़ में
मुँह अँधेरे निकला
रिक्शेवाला!!

बीच का आदमी

दबी इच्छाओं का बोझ
पीठ पर लादे
पसीने की नदी में
वह ढूँढ़ता है ठहराव
अभी आएगा कुछ देर में
छाते, टोपी और छड़ी की
सुनियोजित सुविधा प्राप्त
एक साफ-सुथरा आदमी
दागते हुए गालियाँ
उसके मालिक का

कवच बना यह आदमी
झेल लेगा
आक्रोश के बार
शिकायतों के आक्रमण
उसके रक्त में बसा
वफादारी का नमक
हस्तिसेना की तरह
उलटे पाँव रौंद डालेगा
मुक्ति का सुखद स्वप्न
यह और वह
दोनों चल रहे हैं
विवशताओं के अपने-अपने वृत्त में
सदियों से अनभिज्ञ हैं
इस क्रूर खेल का नियामक
पूरी तरह सुरक्षित है
अपने प्रभामंडल के भीतर।

प्रज्ञा

कम्बल के छेदों से
हाड़ तक घुस जानेवाली
हवा के खिलाफ
लपटों को तेज करते हुए
वह सुना रहा है
आग के आसपास बैठे लोगों को
राम बनवास की कथा
राम थे अवतारी पुरुष
राम ने आचरण किया
सामान्य मनुष्य की तरह
राम हैं सब जगह

राम हैं हमारे-तुम्हारे भीतर
अवचेतन से बसे चरित्र की
विवेचना करते हुए
वह विस्मय भर देता है
सबकी आँखों में
गर्व से कहता है
यह तमाम बातें
कल सुनी थी मालिक के घर
एक पहुँचे हुए संत के मुख से

चिनगारी की तलाश में
फूँकते हुए राख का ढेर
वह सोचता है
राम तो राजा थे
उसके मालिक भी राजा हैं
उसकी नियति तो बस
प्रजा होना है।

बाबूलाल मधुकर

तुम्हारे नाम

तुम्हारी अर्चना कर सकूँ
तुम्हारी वन्दना कर सकूँ
ऐसा कोई विश्वास तो तुमने दिया नहीं
अपनी वंशावली और
भौगोलिक सीमा-सुरक्षा का ध्यान रखकर
हमारी असुरक्षित काया को
कुट्टी-कुट्टी काटकर आपसी हित में बाँटने
के सिवा और क्या किया है तुमने?
हमारे श्रम के पुण्य फल पर कुण्डली मारकर बैठने
के सिवा और क्या किया है तुमने?
हमें दरकिनार कर
आज भी आग पर ढाहने
के सिवा और क्या किया है तुमने?
मैं मुक्त नहीं हो सकूँ
इसके लिए मकड़े का जाल बुनने
के सिवा और क्या किया है तुमने
अभी-अभी जो मंगल-कलश चढ़ा है
उसे रोटी से बड़ा समझने
के सिवा और क्या किया है तुमने?
यह सब कुछ करना
कितनी बड़ी बेईमानी है
जब कि लाल अभी गंगा का पानी है

उसे धूमिल और टेस करने
के सिवा और क्या किया है तुमने?
तुम्हारी अर्चना कर सकूँ
तुम्हारी वन्दना कर सकूँ
ऐसा कोई विश्वास तो
तुमने दिया नहीं!!

तलाश

मेरे चारों ओर शिविर लगे हुए हैं
जहाँ नई-नई तालीमें दी जा रही हैं
दिशाओं में शोर है, इतिहास बदला जा रहा है
दलित मूल्यों के पाए ढाए जा रहे हैं
परम्परा के अनुसार कोई मसीहा या कोई
अवतार जन्म ले रहा है
मैं एक अदने आदमी की हैसियत से
शिविर को देख रहा हूँ
ग्लोब पर खड़ा होकर
भूगोल को देख रहा हूँ
जब कभी मेरी अंतड़ियों की ऐंठन से
आह और कराह निकली है
तभी फुँफकार के अपराध में
मेरी कौम की बस्तियों में
आग लगती रही है आग
जिसे शिविर के लोग
तमाशे की तरह देखते रहे हैं
मसीहा मुस्कुराता रहा है
और मैं चौराहे पर खड़ा होकर
अपनी जमात की तलाश करता रहा
तलाश!!

कठगर-रसगर दतवन

ओ संधाल परगना
सिंहभूमि की बेटियो।
आठ आने में तुम कब तक बेचती रहोगी
अपने ही समतुल्य कठगर कचगर रसगर
दुधगर और पनगर मुट्ठा भर दतवन
अपनी अस्मत और किस्मत
कब तक बेचती रहोगी कब तक?
दतवन और तुम एक-दूसरे का
पर्याय बना दी गयी हो
तुम नगर-महानगर में लादकर
लपेटकर-सहेजकर लाती हो दतवन
और तुम्हारे साथ ही बेचैन होकर
चले जाते हैं जंगल-पहाड़
चली आती हैं नदियाँ निर्झरिणियाँ
सभ्यता संस्कृति आदमियत
निश्छलता और प्रकृति
इन सबसे अलग हो
बहुत ही अलग
तुम लादे हुए होती हो घुघुआते हुए
दहकते हुए कोयले की तरह धधकती हुई
टहकती हुई अपनी भूख, अपनी गरीबी

ओ रत्नगर्भा संधाल परगना
सिंहभूमि की बेटियो!
तुम बखूबी जानती हो कि तुम्हारी
कोख से ही जन्म लेते हैं
कोयला, हीरा, मोती, मूँगा, लोहा, अवरख
और बहुत-बहुत किस्म के अनमोल रत्नधन

लेकिन तुम्हारे हिस्से में तिजारत करने के लिए है
सिर्फ दतवन हँ सिर्फ दतवन

ओ संधाल परगना
सिंहभूमि की बेटियो!
अब भी बोलो, मुँह खोलो
पहचानो अपने दिक्कू को
तुम्हारे दिक्कू अब विदेश में नहीं बसते बल्कि
अपने ही देश में अपने ही प्रदेश में बसते हैं
तभी तो तुम सदियों से
नगर-सभ्यता के बीच
फुटपाथ पर आठ आने मुट्ठा दतवन
के साथ-साथ अपनी अस्मत और
किस्मत को बेचकर नमक के साथ
खाती हो बसिआई-कठुआई रोटी
बोलो! यह सब कब तक-कब तक?

ओ संधाल परगना
सिंहभूमि की बेटियो!
नगर सभ्यता मदांध है
वह जानकर भी अनजान है
तभी तो सदियों से लोकतांत्रिक चौराहे पर
आठ आने में बिक रही है सभ्यता
संस्कृति, अस्मत और किस्मत
जिस पर ही गुमान है इस देश के
कर्णधार पहरुओं को...

ओ संधाल परगना...
सिंहभूमि की बेटियो!
तुम्हें कतई निराश नहीं होना है

भाग्य-भरोसे कतई नहीं सोना है
देखो पूरब में घन-घटा छा रही है
पढ़ो
बिजलियाँ इतिहास के अद्यतन
सुनहले पृष्ठ पर
तुम्हारे ही नाम लिख रही हैं
और कड़क-कड़क कर कह रही हैं
दत्तवन के साथ-साथ
पर्वतास्त्र लाने के लिए
हाँ पर्वतास्त्र
नगर-सभ्यता के बीचोबीच
पटक देने के लिए
सभ्यता-संस्कृति
अस्मत् और किस्मत
की रक्षा के साथ-साथ
तुम्हारी भूख और गरीबी
मिटा देने के लिए!!

मोहन दास नैमिशराय

शब्द

शब्द चोट करते हैं
जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित
शब्दों के प्रतीक पुरुष होते हैं
जैसे अम्बेडकर से गाँधी
और गाँधी से अम्बेडकर
दलितों के सीने जब
छलनी होते हैं
शब्द उभरते हैं
शब्द बनते हैं धारदार
जहर बुझे चाकू की तरह

शब्द ही तो थे
जो मनुस्मृति में लिखे गये
रामराज चला गया
पर शम्बूक की चीख की अनुगूँज अभी बाकी है
जैसे दलितों की पीठ पर चोट के निशान
शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं
चोट करते हैं
जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित

रात में डूबा लोकतंत्र और वे

वे आ गये
हाथों में बछीं
रिवॉल्वर
नंगी तलवारें
कटूटे लिये
राजनीति के अलमरदारों से भरी जीप गाड़ी
होंडा
मारुति
फिएट
एम्बेस्डर
आते ही सीढ़ियाँ ले
चुनावी नारों से पटी दीवारों से
पोस्टर उतारना आरंभ कर देते
उछलते
गीत गाते
ढोल बजाते
उनमें नायक से खलनायक सभी तक होते
वे चंबल, भिंड, मुरैना के बीहड़ों की
पैदाइश न होते,
प्रतिक्रियाओं के बीच जन्मे, पले
महानगरीय संस्कृति के मुखौटे होते
उनका शोर सुनकर
घरों में माताओं के स्तन मुँह में डाले
बच्चे चौंक उठते
पिता खिड़की पकड़ते
सांकल, सिटकनी को चौक करते
कमजोर दरवाजों को छूकर
उनकी ताकत का अहसास करते

उनके आने पर जाग हो जाती
कुत्ते सतर्क हो उठते
और आदमी
अपने-अपने भुतहा-कटघरों में
अपनी-अपनी धड़कनों को ही
सुनने का प्रयास करते।

राजा की सवारी आ रही है

राजा की सवारी आ रही है
यांत्रिक घोड़ों पर सवार सुरक्षाकर्मी
सायरन सुनकर ही
समझ जाता है आम आदमी
राजा की सवारी आ रही है

चौराहे पर खड़ा सिपाही
संकेत देता है
लालबत्ती पर राजा रुकेगा नहीं
भीड़ खड़ी
ठगी देखती है
राजा की सवारी आ रही है

राजा के होंठों पर मुस्कान है
राजा आम आदमी नहीं है
राजा की सवारी नहीं
जो रूक-रूक कर चले
उसे योजनाएँ बनानी हैं
उद्घाटन करने हैं
राजा की सवारी आ रही है।

लालचन्द राही

मोची की व्यथा

फटे जूते सी
जिन्दगी सीने के लिए
चमड़ा काटता है वह
किसी की जेब या गला नहीं

पॉलिश करने से पहले
दो कीलें भी ठोकता है
दो रूपयों के लिए
एक रुपया टिका कर
आगे बढ़ जाता है ग्राहक
उसके सीने में कीलें ठोक कर

मजूरी पूरी न मिलने पर
चीखता है वह
जाते हुए सवर्ण पर
रुआँसा हताश हो
बुदबुदाता है वह
'रे राम
आज कितनी कीलें सहनी होंगी
साँझ तक?'

दलित कवि को

दर्द के दस्तावेज को
सहेज कर रखने वाले
मेरे दलित कवि
भारतीय काव्य जगत्
जाग रहा है आपके रूप में
जंजीरें तोड़ने के लिए

थक मत जाना
भले ही डंक मारते रहें बिच्छू
कभी-कभी रोगी भी
दर्द बन जाता है चिकित्सक के लिए
किन्तु उपचार नहीं त्यागता वह

काश मुझे भी
अपने आदम से मिल जाये त्रिशूल
तो चुभाता रहूँ प्रतिकूलता पर
और निकालता भी रहूँ
नंगे पाँवों में चुभे शूलों को
हालांकि
फर्क दिखाई नहीं पड़ता
आदमी और गंडे की चमड़ी में॥

ठकुराइन की सोच

जनवरी के महीने में
सुबह की शीत को
ठोकर मारती हुई
कुएँ की मेड़ पर

प्राचीन संस्कृति की प्रतीक
गुलमोहरी बिंदिया लगाये
टपरिया पर पड़ी छान सी
तार-तार होती
ओढ़नी का पल्लू समेटे
पुराने तौलिये में
चाँद सी ज्वार की रोटियाँ तीन
लहसुन की चटनी के साथ
युद्ध के मोर्चे पर जाती सी वह
खुरपी उठाती है नींदने के लिए
तभी ऊनी शालधारी
ठकुराइन पूछती है
तुझे ठंड नहीं लगती?
'लहसुन की चटनी खाने वालों को
ठंड नहीं लगती माँ।'
आत्मविश्वास से सना उत्तर पाते ही
ठकुराइन कहती है
'तभी मैं सोचती हूँ
लहसुन और मिर्च इतने मंहगे क्यों हैं?'

विधवा विवाह कार्यक्रम

सरकारी काम है जाना पड़ेगा
बताने को झाड़ू पोंछा लगाना पड़ेगा
तेरे जैसी कोई दूसरी नहीं है
नहीं तो उसे ही पहुँचा देते
हरामजादी रात भर ऐश करेगी
नहीं तो कल भूखों मरेगी
विधवा आश्रम को क्या देती है सरकार
यह तो भला है तहसीलदार

जो सेवा का मौका देता है
विधवाओं से काम लेता है
नहीं तो क्या रखा है तेरे धरम में
ऐश करना कहाँ है तेरे करम में
करम कर करमजली
भूखे को भली है सड़ी-गली
तू दूसरे की भूख मिटायेगी तो
खुद भी तृप्त हो जायेगी
आश्रम का अनुदान बढ़ जायेगा।
नहीं तो विधवा को कौन गले लगायेगा?
जल्दी कर गेट पर कार खड़ी है
वापस छोड़ जाएगी
रात भर में ठकुराइन बन जायेगा
बेचारी मान्यताओं की मारी
अधीक्षिका की मार से बचने के लिए
कुछ ही देर में
विश्राम गृह पहुँच जाती है
जहाँ पर नेता जी ठहरे हैं
कल के विधवा विवाह कार्यक्रम के
मुख्य अतिथि हैं।

ओम प्रकाश मेहरा

आकाश

आकाश मैंने तुमसे
तुम्हारी न ऊँचाई माँगी थी, न तुम्हारा विस्तार
मैंने सिर्फ तुम्हारे एक छोटे से टुकड़े के नीचे
माँगी थी, अपने सर के लिए छत

धरती मैंने तुमसे
न तुम्हारी गरिमा माँगी थी, न तुम्हारा धैर्य
मैंने माँगा था दो गज जमीन का एक टुकड़ा
और तुम्हारे भीतर उतना ही बड़ी
इक कब्रगाह

हवा मैंने तुमसे
तुम्हारी शोखियाँ कहाँ माँगी थीं?
हाँ मेरा दम न घुटे, बस इतना ही तो माँगा था।
नदी! कब कहा था मैंने कि
रुक जाओ मेरे लिए
हाँ अंजुरी भर पानी, जरूर माँगा था
अपनी प्यास के लिए
ओ तितली, तेरे रंग कब चुराने चाहे मैंने
लेकिन मेरा जीवन बदरंग न हो
क्या यह सोचना भी गुनाह था?
अपने लिए जरूरत से ज्यादा बटोरने का तो

स्वप्न भी नहीं देखा मैंने कभी
तब
आज तुम सबसे जवाब माँगता हूँ
ओ आकाश, ओ धरती, ओ नदी, ओ हवा, ओ तितली
जरूरत भर भी
छत, जमीन का टुकड़ा, सांस भर हवा, प्यास भर पानी
और बस जरा से रंग
तमाम उम्र क्यों न मिले?

स्वप्न-बीज

प्रकाश यहाँ असंभावना है
सपनों का होना
सदा हादसा बना है
यहाँ गुनगुनाहट एक सहमी हुई सी
ख्वाहिश हो सकती है बस?
मेरे पास एक उम्मीद का दिया है
और इस बियाबां में अँधेरा घना है
हाँ मेरे पास
एक मिट्टी का दिया है,
और उसकी सिहरती हुई लौ
धरती की हरियाली
और छाँह भरी अमराई का
धूमिल पड़ चुका एक चित्र
जीवन के नाम पर मात्र यह पूँजी है मेरे पास
उसे कोई धूल भरी आँधी
किसी बियाबान में उड़ा न ले जाए
यही मेरे अस्तित्व की
दारुणतम चिंता है
और मेरी जिजीविषा

का उत्कटतम आधार
बावजूद इसके
कि हजार-हजार प्रतिबंधों
से घिरा हूँ मैं
कहीं न कहीं
रोपना चाहता हूँ
एक सपने के बीज
एक लहलहाती फसल के लिए
वैसे मुझे कोई हक नहीं
कि तुम्हारी धरती पर यह सब करूँ
और तुम्हारी व्यवस्था के लिए
तैयार करूँ एक असुविधा भरा खलल
तुम्हारी व्यवस्था में तो
बिना इजाजत
एक पौधे का जन्म लेना तक
बगावत है
इस तरह की व्यर्थ
बातों के लिए
कोई गुँजाइश नहीं है वहाँ
वैसे यदि तुम सुन सको तो
चुपके से
यह भी बताना चाहूँगा तुम्हें
तुम्हारी यह व्यवस्था
अब जर्जर हो चुकी है
और किसी भी दिन
उसके पास टूट कर
ढह जाएँगे
इसलिए मत टोको मुझे
उसे भहरा कर गिर पड़ने के पहिले
यदि मैं कर पाया

वह सब जो मैं सोचता हूँ
उसका भी सुयश मिलेगा
तुम्हें ही
आने वाला वक्त
और आने वाली पीढ़ियाँ
तुम्हारी ध्वस्त व्यवस्था के बीच
मेरे द्वारा रोपे हुए
स्वप्न के ही सहारे
फिर बुनेंगी जीवन की नई
व्यवस्था के आकार
शायद मैं नहीं होऊँगा तब
लेकिन मेरा स्वप्न बीज
तब तक हो उठा होगा
पल्लवित साकार।

भागीरथ मेघवाल

खिड़कियाँ खोल दो

वक्त के सामने
दीवार बन कर
खड़े मत रहो।
लकीर के फकीर बन कर
अड़े मत रहो।

बन्दरिया के लिपटाये रखने से
उसका मरा बच्चा जी तो नहीं जाता।
सड़ कर, गल कर
उसका अस्तित्व घुल कर
बह जाता है
समय के साथ।

तुम्हारे तो नाक भी है
और दिल और दिमाग भी है
फिर क्यों सड़ांध को
अपनाये हुए हो।
इन्सान को इन्सानियत से
बेदखल करने वाला मनु
आज भी तुम्हारे लिये
पूजित क्यों है?
न्यायालय के ऐन सामने

तुमने
अन्याय के इस प्रतीक की प्रतिमा लगाकर
किस समझ और प्रगतिशीलता का
परिचय दिया है?
इतिहास
मात्र पढ़ने और डिग्रियाँ लेने की
वस्तु नहीं होती मित्रो!

वह तो
सबक और सीख का
एक आईना है
अपनी पराजयों और
पिछड़ेपन का प्रतिबिम्ब
इसमें देखकर भी
फूट और विद्वेष के जनक को तुम
नहीं पहचान पाते तो
तुम्हें क्या कहें?

इतना ही कहूँगा
वक्त के सामने
दीवार बन कर
खड़े मत रहो
उसके किसी झोंके से
ध्वस्त और भूसात होने से पहले
खोल दो खिड़कियाँ
दिल की और दिमाग की भी
आने दो ताजी हवा

ताकि
सडांध से घुट-घुट कर

जीने से बच जायं
हमारी
आने वाली पीढ़ियाँ!

पीढ़ियों के सवाल

खुल गयी हैं खिड़कियाँ
आने लगी है ताजी हवा
युगों-युगों की घुटन
अब घट रही है
तुमने तो हमें बना दिया था
अभागा और पतित
अधिकारों से वंचित
सेवा भर करने वाला
मानव-पशु
किन्तु तुम्हारा वह सच
दुनिया का सबसे बड़ा झूठ था

हम जान गये हैं कि
हम अभागे नहीं हैं
हमारा भी हक है, हिस्सा है
देश के धन
देश की धरती
और सत्ता में
हमें इनसे वंचित करने की
तुमने जो साजिश की थी
उसकी अब पोल खुल चुकी है
तुम्हारे जुल्मों की खाता-बही
अब हम पढ़ सकते हैं
उनका हिसाब भी माँग सकते हैं

भरपाई भी कर सकते हैं
यह सवाल हमारे अकेले का नहीं
पीढ़ियों का है
जिसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं है

हम जानते हैं
अभी कई लोग सोये हुए हैं
तुमने उन्हें दूध में
जो अफीम मिला-मिलाकर
पिलायी थी
उसका असर एकदम जायेगा भी नहीं
फिर भी
सवेरे को तुम कब तक
रोक सकते हो?

सूरज का रथ तो
चल पड़ा है
उषा की लालिमा
तुम भी तो देख रहे हो
पैसों की दीवारों
और शब्दों के अम्बारों से
उसे कब तक
ढंक सकते हो
आने वाली पीढ़ियाँ भी
बिना पेट के
पैदा होने वाली नहीं हैं
न बिना मस्तिष्क के
जब रात थी
तब तुम्हारी चल गयी
खूब डाके मार लिये

किन्तु दिन के उजाले में
यह अब कब तक चलाओगे?
कोटि-कोटि मानव
तुम्हारी डाकेजनी को
कब तक करेंगे दरगुजर

फूँका जा चुका है
संघर्ष का शंख
इस संघर्ष के समापन पर
तुम्हें सिंहासन खाली करना होगा
करना ही होगा!!

सुशीला टाकभौरे

पीड़ा की फसलें

भूकम्प व्यथा का कारण हैं
मैं व्यथित हूँ
मानव के प्रति मानव के
अमानवीय व्यवहार से
जो भूकम्प-सा
तहस-नहस कर देता है
मानवता के धरातल को

सदियाँ बीत गईं
तुमने मनुष्य नहीं बनने दिया हमें
पीड़ाएँ फसलों के साथ
उगती चली आईं
जितना काटते रहे उन्हें
उससे कई गुना ज्यादा उग आईं
ओ शबरी के राम!
आँखें चुरा कर
संवेदना दिखाना बन्द करो
तुम्हीं ने तो सीता को
धरती में समा जाने को मजबूर कर दिया था
तब से
विश्वास, भक्ति और प्रेम से पगी सीता
बार-बार

धरती में दफनाई जाती रही है
इसीलिए
पीड़ा की फसलें
उगती रही हैं

पर आज
जानकी सब जान गई है
वह धरती में नहीं
आकाश में जाना चाहती है
देवकी की कन्या की तरह
बिजली-सी चमक कर
सन्देश देना चाहती है
तुम्हारी कंसीय-मानसिकता के अन्त का
हे राम!

मानव-मानव के बीच
भेदभाव करना बन्द करो
बन्द करो शम्बूक का बध करना
क्योंकि
अब हम अपना सबेरा ढूँढ लेंगे
हमने आँखों में सूरज भरना सीख लिया है
चाँद को मुट्टी में
भरना सीख लिया है
समय को बन्धक भी बनाना
सीख लेंगे!

उगते अंकुर की तरह जीओ

स्वयं को पहचानो
चक्की में पिसते अन्न की तरह नहीं
उगते अंकुर की तरह जीओ

धरती और आकाश सबका है
हवा प्रकाश किसके वश का है
फिर इन सब पर भी
क्यों नहीं अपना हक जताओ
सुविधाओं से समझौता करके
कभी न सर झुकाओ
अपना ही हक
नयी पहचान बनाओ
धरती पर पग रखने से पहले
अपनी धरती बनाओ।

घर की चौखट से बाहर

दरवाजे के पीछे
पर्दे की ओट से
झाँकती औरत
दरवाजे से बाहर देखती है
गली मुहल्ला शहर संसार

आँख, कान, विचार स्वतंत्र हैं
बन्धन हैं सिर्फ पाँव में
कुल की लाज
सीमाओं का दायरा
घर की चौखट तक
मायका हो या ससुराल
दरवाजे के पीछे
पर्दे की ओट से
वह देखती है संसार
समझने लगी है सब
फिर भी है चुप

हिला कर हाथ अपने
स्वयं पकड़ लेती है बन्धन
जकड़े रहने देती है पाँव

अब
आने वाली पीढ़ियों को
वचाना होगा।
रास्ता देना होगा
आग बढ़ कर
घर की चौखट से बाहर निकलना होगा!!

नहीं हारेगी कभी

कितनी कन्याएँ जन्म लेती हैं
कितनी वृद्धाएँ मरती हैं
पर
कितनों को संसार जानता
कितनी मरती हैं अपनी जमात के लिए?
घर परिवार के छोटे घेरे में
घिरी औरत पहुँच रही है
रोजी-रोटी तक
जीवन को धन्य मानती
पर देश समाज
और खुद अपने से
बेखबर
पर अब वह सजग है
और सतर्क भी
कि कोई नहीं पाए उसके
बढ़ते कदमों की रफ्तार

वह बदलेगी अब
सदियों की परिपाटी
नहीं हारेगी हिम्मत
नहीं हारेगी कमी
नहीं हारेगी!

मासूम भोली लड़की

उस छोटी सी लड़की को
रख दिया है
मैंने ताक पर
मासूम भोली
टुकुर-टुकुर देखा करती थी
हर बात को भौंचक होकर

रास्ता पार करना हो
या भीड़ का सामना हो
पकड़ लेती थी माँ का हाथ
आंचल में मुँह छिपाती
नहीं देखती थी
अपनी राह, अपनी मंजिल
कैसे करेगी जिन्दगी बसर?
रख दिया है मैंने उसे ताक पर
'ताक' जहाँ दीपक जलता है
ऊँचाई भी है
पहले वह अपने घर की
जमीन देखेगी
फिर छत
वह देखना चाहेगी
आसमान, पक्षी, पतंग

उड़ाना चाहेगी दूर बहुत दूर
दुनियाँ को अपनी नजर से देखेगी

‘ताक’ पर रख दिया है मैंने
कठोर बनकर
सिखाना चाहती हूँ
लड़की/तुम किसी पर निर्भर नहीं
स्वयं पूर्ण हो
तुम मुझसे अलग नहीं
पर तुम्हारा अलग अस्तित्व है
तुम्हारी राह, तुम्हारी मंजिल
मुझसे बहुत आगे है

बहुत से रास्ते पार करने हैं
भीड़ का सामना करना है

भीड़ से अलग
अपनी पहचान बनानी है
तुम्हें जूझना है
आकाश को चूमना है
इसीलिए अपने से अलग
रख दिया है मैंने तुम्हें
ताक पर!

आज की खुदा औरत

तुमने उघाड़ा है
हर बार औरत को
मर्दों
क्या हर्ज है

इस बार स्वयं वह
फेंक दे परिधानों को
और ललकारने लगे
तुम्हारी मर्दानगी को
किसमें हिम्मत है
जो उसे छू सकेगा?

पिंजरे में बन्द मैना को
किस्सागोई पाठ पढ़ाते रहे
लाज-शर्म का हिसाब लगाते रहे
तालाबन्दी का हक जताते रहे

जो तुमने पाया वह
तुम्हारा सामर्थ्य
नारी ने स्वयं कुछ किया
तो बेहयाई
अब बताओ
तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई?
गल चुकीं
बहुत मोमबत्तियाँ
आज
वह जंगल की आग है
बुझाये न बुझेगी
बन जायेगी
आग का दरिया

उसके नये तेवर पहचानो
श्रद्धा शर्म दया धरम
किसमें खोजते हो?
संभालो अपने

पुराने जेवर
थान के थान
परिधान

आज यह खुद्दर औरत
नंगेपन पर उतर कर
परमेश्वर को लजायेगी
पुरुष के सर्वस्व को नकार कर
उसे नीचा दिखायेगी!!

निशान्त

सलाह

वह हरिजन था
उसने मन्दिर में
प्रवेश करने की कोशिश की
और तुमने उसे
कत्ल कर दिया
वैसे इसकी

जरा भी जरूरत नहीं थी
तुम उसे विज्ञान
और नये ज्ञान का
रास्ता दिखा देते
या किसी नास्तिक से
मिलवा देते!

कैसा दुःख

दुःख कैसा
अगर आज जीत गई
जिप्सी और स्टेनगन
सामने जो खड़ी थी?
वह भी तो / साइकिल या
लाठी नहीं थी।

हमारा बदलना

सुनते हैं / तुम बड़े फिकरमंद हो
हमारे लिए
लेकिन हमारे आकाओ
हमें तुमसे कोई उम्मीद नहीं है
वास्तव में तुम जो कुछ भी
करते हुए नजर आ रहे हो
वह तुम्हारे अपने लिए ही है
हाँ! एक व्यवस्था या / कुव्यवस्था
तुमने / जरूर बना रखी है
हमारी तकदीर तो
हम ही बदल सकते हैं
अपने आपको बदल कर
लेकिन हमारा अपना बदलना...
(बस यही तो मुश्किल है)

जो लौट नहीं सकते थे

लड़ाई तो सबकी थी
लेकिन जंग में / कुछ एक ही कूदे
उन्हें भरोसा था कि
वे लौटेंगे उनके पीछे एक दिन
लेकिन ये क्या?
वे तो उन्हें ही / चिढ़ाने लगे
मूर्ख और गंवार बताने लगे
सच्चाई तोड़ कर जो कूदे थे
उनमें से भी कुछ / वापिस जाने लगे
और जो लौट नहीं सकते थे
वे पछताने लगे।

ओमप्रकाश कृत्यांश

रघुपत बाबू को गालियों से गोदता है

गेहूँ का बोझ उठाए गनेसी
जरा रुककर देखता है
भेड़ पर बैठे रघुपत बाबू की निगाह
निगाह, जो हँसुए से गेहूँ काटती ललमुनिया
के आस-पास मँडराती है
फटी कुरती (ब्लाउज) से झाँकते उसके स्तन से
तो कभी उसके नितंब से
जाकर टकराती है
पर / अगले ही क्षण
गनेसी अपने साथी बनहार राम निहोरा
के टोकने पर चल पड़ता है उठाए बोझ/दबाए क्रोध
आरी-पगारी फलांगते खलिहान की ओर
लेकिन / उसकी आँखों में जम कर रह जाती है
रघुपत बाबू की निगाह
और मन के कुँ में 'काई' की तरह
जमकर रह जाता है और भी बहुत कुछ
दूसरी खेप में वह / रघुपत बाबू की ओर झपटता है
उन्हें पागल कुत्ते की तरह भंभोड़ता है
लेकिन जैसे ही लगती है
उसके धवाहिल अंगूठे में ठेस
उसका सोच-क्रम टूटता है
फिर गनेसी / अपने गमछे से

पसीने में नहाया
अपना तमतमाया चेहरा पोंछता है
और मन ही मन रघुपत बाबू को
गालियों से गोदता है।

रामटहल की मूँछ

रामटहल चपरासी
बड़े साहब से
जब भी मुखातिब हुआ
सिर झुकाकर / गिराकर अपनी मूँछ का ताव
बिखराकर बाल
संभाल कर कंधे की गमछी
और पहनाकर अपनी जुबान को
अदब की लगाम / लेकिन
कम्बख्त / गिराना भूल गया था, उस दिन
अपनी मूँछ का ताव
बस, इतनी सी बात
बात, बड़े साहब की जान पर बन आई
शान धूल में सन गई
उनको रामटहल का सीना
कोई भयावह चट्टान दिखने लगा
वह, उनसे ज्यादा कड़ावर लगने लगा
बस देखते ही देखते
साहब भी बन गए
ज्वालामुखी पहाड़ / उगलने लगे आग
और तब
रामटहल के हाथ आपस में जुड़ गए
शायद उसे लगा / जरूरी नहीं मूँछ
रोटी से ज्यादा!

हरकिशन सन्तोषी

द्रोणाचार्य

द्रोणाचार्य
क्या तुम इस देश के 'मनु' को जानते हो?
द्रोणाचार्य
क्या तुम 'तथाकथित वीर अर्जुन' को जानते हो?
द्रोणाचार्य
क्या तुम 'परम वीर एकलव्य' को जानते हो?
यदि नहीं
तो आओ मैं तुम्हें इनका परिचय कराऊँ!
तुम्हारे अन्तर्मन की व्यवस्था का नाम
है मनु
तुम्हारे अन्दर के छल-कपट की शिक्षा का नाम
है अर्जुन
तुम्हारे कलुषित अन्तर्मन की पहचान का नाम
है एकलव्य

द्रोणाचार्य
तुम तो सिद्ध गुरु थे
और विद्याओं के धनी थे
फिर क्यों तुमने
एकलव्य का माँगा था अंगूठा?
संकीर्णता के इतिहास के पन्नों में
लिखी गई है तुम्हारी गुरुदीक्षा

दलितों के जो काम न आई
यह कैसी थी ब्राह्मण तुम्हारी शिक्षा?

इस देश में जब भगवानों का
बंटवारा हो सकता है
तो क्यों
खेत-खलिहानों का
उद्योग का, दुकान का
आंगन और मकान का
बंटवारा नहीं हो सकता?

अघोषित आरक्षण की सीढ़ियों से
जो चढ़े हैं आसमान पर
पहले तो उन्हें जमीन पर उतारो
और बंटवारा करो
घर के सारे सामान का
फिर बांटो
आरक्षण की दुकान से

जब भी
मेहनतकशों के पसीनों की बूंद
अंगड़ाइयाँ लेगी
या जब जब शान्ति करवटें लेगी
तब-तब क्रान्ति जन्म लेगी।

कब तक चलेगा
यह जुल्म और सितम का सैलाब?
एक भाई भूखा सोता है
दूसरा खाना फेंकता है
एक नभ को छूता है

तो दूजा जमीन पर रेंगता है।
उच्च संभ्रान्त जातियाँ
भला क्यों समझ बैठी हैं अपने को
इस राष्ट्र की मालिक
क्यों नहीं छोड़ना चाहतीं
अपना स्वामित्व
क्यों नहीं देना चाहतीं
अधिकार सभी को
जिससे कि बचपन, जवानी और बुढ़ापा
फागुनी रंगों में बसा लें अपना मन
सौहार्द्र भाईचारे के इन्द्रधनुषी रंगों में
दलितों और पिछड़ों की
छातियों की पसलियों को बनाकर सीढ़ियाँ
उन्हीं के श्रम से खड़ी की गई हैं बिल्लियाँ
उन्हीं के पसीने से बांधी गई हैं रस्सियाँ
उन्हीं की गुलामी से लगाई गई हैं तख्तियाँ
जिससे कि
मंजिल तक पहुँचने से पहले ही
वे गिर जाएँ
षड्यंत्र की खाई में।

मेरे अन्धेरो को
न तुम बदनाम करो
तुम्हारी ही चाँदनी ने जलाया है घर मेरा
जब भी
हमें कुछ देने की बारी आई
तुमने योग्यता का सर्प फेंका
हमें डसने के लिए
फिर फेंके भाले आन्दोलनों के
तोड़-फोड़ के आत्मदाह के

ताकि छाती का पी सकें
खून जी भर कर
हम जैसे दलितों, पिछड़ों का, निर्धनों का

यह देखकर
मैं सोच में पड़ जाता हूँ कि
मित्र तुम कैसे शाकाहारी हो
जो तड़पते मानव का लहू चूसे जा रहे हो
सारी सरकारी
नौकरियों को हड़प जाने की नीयत से
को सड़कों और खेतों में
जी भर कर उगाए जा रहे हो
मित्र तुम कैसे अहिंसावादी हो?
मित्र तुम कैसे शाकाहारी हो
अपने ही भाइयों के भविष्य को
काट-काट कर
सुविधाओं की थाली में परोस कर
किशतों में खाए जा रहे हो

पहले तो तुम्हीं ने काट दिए हाथ-पाँव हमारे
फिर तुम्हीं कहते हो कि
दौड़ में आगे आओ

हमें जितना पीछे धकेला है
तुम उतना आगे आ जाने दो हमें
तब चलाना योग्यता के तीर
तब हमारी छाती से टकरा-टकरा कर
तुम्हारे तीर वापिस चले जायेंगे
तुम्हारे ही श्वान मुख में घुस जायेंगे
एकलव्य के तीरों की तरह

योग्यता के प्रश्नचिह्न लगाने वाले
अगर तुम्हीं योग्य थे
तो क्यों तुमने पाकिस्तान बनवाया?
क्यों तुमने
मातृभूमि का टुकड़ा चीन को काबिज करवाया?
क्यों तुमने
एक आँख के बदले दूसरी आँख का ऑपरेशन कर दिया?
क्यों तुमने
ऑपरेशन के समय मरीज के पेट में कैंची छोड़ दी?
क्यों तुमने
राष्ट्र-युद्ध के समय जमाखोरी की
क्यों तुमने
अपने देश की गुप्त सूचनाएँ विदेशों को बेचीं
यदि ऐसा हो योग्यता का तुम्हारा मापदण्ड
तो हमें पिछड़ा ही रहने दो
हमें दलित ही रहने दो
हमें निर्धन ही रहने दो!

सी.बी. भारती

सियासत

परम्परागत-कलुषित
निहित स्वार्थवश निर्मित-मकड़जाल
तुम्हारी शक्ति और
धर्म का अवलम्ब ले बढ़ता रहा
अंधविश्वासों का आश्रय ले
उसकी शक्ति पली-पुसी बढ़ी
शोषण का एक नायाब तरीका चलता रहा
सदियों सदियों तक

पलती रही सुख-सुविधाओं में
पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ
क्योंकि वंचित कर दिया था तुमने
करोड़ों-करोड़ दलितों को
काले आखर से
जो है विकास का मूलाधार

तुम्हारे ये अभिजात्य हथकण्डे
तुम्हारी वे बाजीगरी
निश्चित ही सराहनीय है
अनुकरणीय है
मीठे जहर सा लुभावना है
क्रूरता भरा तुम्हारा कुत्सित

इतिहास
गंदी मानसिकताओं से उसांसते
तुम्हारे अहसास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने चाहिए
तुम्हारे ग्रन्थों में

वैसे भी तो
तुम्हीं ने तो दिए हैं भारत को
जयचन्द
तुमने ही तो खड़े किए हैं
द्रोणाचार्य
और अर्जुन जैसे धनुर्धर
तुम्हारी ही
सुनियोजित व्यवस्था के षड्यंत्र के तहत
कटते रहे हैं हजारों हजार अंगूठे
एकनिष्ठ दक्ष एकलव्य के
पन्नाधाय के बेटे कल्ल होते रहे हैं।

चुनौती

तुमने चुरा लिए
हमारे विकास के रास्ते
शिक्षा पर लगा दिए प्रतिबन्ध
आखर पर आज रख दी है तुमने
हमारी भागीदारी के लिए
योग्यता की शर्त

पर कब तक फेंकोगे तुम
अपना यह मकड़जाल हम पर?
घबराओ नहीं
समय आ रहा है

जब हम भी बढ़ेंगे तुमसे
दौड़ने की शर्त
जीतेंगे बाजी
तोड़ेंगे तुम्हारा दर्प
सुनो परिवर्तन की सुगबुगाहट
बदलती हवा का रुख
पहचानो पहचानो पहचानो!

सिसकता आत्मसम्मान

(1)
स्वतंत्रता के अधूरे अहसास से
धूमिल आत्मसम्मान के व्यथित क्षणों में
ठहर-ठहर कर
स्मृतियों के दंश
घावों को हरा कर देते हैं
याद आती है
पगडंडियों पर से भी
न गुजरने देने की रोक-टोक
टीचरों व सहपाठियों की कुटिल दृष्टि
उनके बिहँसते खिजाते अट्टहास
ठेस पहुँचाते घृणित असमान व्यवहार
पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ वंशजों के बेगार
ढंग से कपड़े न पहन पाने की मजबूरी
अंधकार में डूबे घरों में
टिमटिमाती ढिबरी की लौ
रोटियों के लिए मशक्कत व
करुणा क्रन्दन की चीत्कार भरी
यादें भूखे नंगे बचपन की!
(2)

हो सकता है
आजादी तुम्हें अपरिचित सी लगे
क्योंकि
इन अहसासों की अनुभूति के अवसर
तुम्हें मिले ही नहीं
आजादी का मतलब
इज्जत की जिन्दगी पेट भर भोजन
जीवनयापन के साधन शिक्षा के अवसर
ढके तन निखरे बदन
परन्तु गुलामी?
गुलामी तो तुम्हें खूब याद होगी
गुलामी तो
तुम्हारे नाम की ही पर्याय है न
तुमने जी है गुलामी
कीड़े-मकोड़ों से बदतर जिन्दगी
छीजती इज्जत
बिखरते सम्मान व
लुटती बहन बेटियों की आबरू
तुमने भोगी है भोगी है!!

महामानव ई. बी. रामास्वामी नायकर

सम्मान
जिसकी ललक लिए सदियों से
देश का शोषित समाज
जूझता रहा
जीवन भर घृणा व उपेक्षाओं से
और
उनके आत्मसम्मान
के अहंकार की अग्नि में

स्वाहा होता रहा उनका आत्मसम्मान

करता रहा वह
दूसरों की सेवा
मजबूरी वश
झिड़कियों व गालियों के बीच
दूसरों की जूठन पर
भरता रहा उसका पेट

ऐसे में उसने
एक उद्बोधन दिया
आत्मसम्मान का
जो मात्र शब्द नहीं आन्दोलन बन गया।
महाबलीपुरम की धरती से निकल
पूरे देश में फैल गया
मिली नई परिभाषा
हुए नतमस्तक करोड़ों सिर
महामानव नायकर के पथ में।

रुढ़ियाँ

रुढ़ियों के अन्धकार
सतरंगी सपने बन
विश्वास की सीढ़ियों पर
पग धरते
घर करते गये हमारे अन्तस में धीरे-धीरे
आस्थाओं के प्रतिमान मान
अंधविश्वासों की इन भटकनों को
भोर की उजास जान
हम भरते रहे डग

शोषण की अन्तहीन खाइयों में

दोहरे मानदंडों के
सख्त हो चुके इन दरख्तों को
हमारे ज्ञान के झकोरों ने
झकझोरा है हिलाया-डुलाया है
इन बीज-वृक्षों की पनपती बेल को
अन्तस की रोशनी में
जितना भी बन पड़ा हमने धक्का लगाया है
षड्यंत्रों के कंटीले जहरीले ये झाड़ू-झंखाड़
प्रवेश करते रहे हमारी स्मृतियों में
सदियों तक
कुंद करते रहे हमारी कल्पनाओं को
इन्होंने हमारी संवेदनाओं को
भोथरा बनाया है!

कुसुम मेघवाल

रोटी

रसुआ ने पूछा
माँ
तुम तोड़ती क्यों / पत्थर
क्यों चिलचिलाती / धूप में
बरसते
अंगारों के बीच
बैठी हो
चुप्पी साधे
न छाया है
न पानी है
यहाँ तो केवल
तपती दोपहरी है
माँ ने कहा
'बेटे
दो जून की
रोटी जो कमानी है।'

मेहतरानी की कोस

दिन में
मेहतरानी की छाया से डरते
मूँछों पर ताव दे दे

दूर-दूर हट-हट करते
रात्रि में उसके हारे
खेत में पथार में
उससे सटते उसे चूमते-चाटते रहे
और एक दिन
कमला की गोद में
दे दिया एक लाल
दोहरी चाल वाले ठाकुरों ने

अब क्या करे कमला ?
क्या वह रोज इज्जत की खातिर ?
'जैसे एक बार गई वैसे हजार बार गई'
बात बरोबर ही है
तो फिर ?
'बदला लेना होगा
इस दोहरे चलन का
नतीजा भोगना पड़ेगा गोद में लाज थमाने का'
मेहतरानियों की सभा बुलाई
जाओ कमला बनकर
एक-एक ठाकुर को वर लो
उसके बच्चों को जनो
और पकड़ा दो उन सबको फिर
एक-एक झाड़ू
एक-एक पंजा
और भेज दो
उनके बापों के घरों में
उन गोरे चिट्ठे ठाकुरों की औलाद को
उठाने के लिए
अपने बाप दादों का मलमूत्र !

दयानन्द 'बटोही'

द्युपितर सुनो

आज अग्नि जला कर
मैंने स्वाद भरा भोजन किया
जनता सकुचाती
नितराती गाती है
सच-सच बतलाओ द्युपितर
कब तक अँधेरे में रखोगे?
मैंने जान लिया है तुम्हारी नीति को
तुम्हारी भाषा को
आस्था से नहीं
घबराहट से जनता तुम्हें पूजती रही
अब
तुम्हारी यंत्रणा-मेरी नीति को
यातना भरे भाव को
समझकर
यातनाओं के जंगल में
लहलुहान हो दौड़ रहे हैं वह

अभी-अभी तो अग्नि फेंका हूँ
जनता ले गई है
देखो! उस गाँव को
धुंआ उठ रहा है
देखो! द्युपितर! देखो!!

सकुचाओ नहीं!
आह!
मेरे कलेजे को कुतर-कुतर
खाता है गिद्ध तुम्हारा
तुम स्वयं खाओ
आओ द्युपितर आओ!
मैं खुश हूँ तुम्हारी यंत्रणा से
मैं नहीं डरता हूँ यातना से
देखो! मेरी ओर देखो!
आँखें मत नवाओ
आओ मेरे हृदय पिण्ड के लहू पीओ
तुम यातना हो
यातना में जिओ
द्युपितर तुम कल के
आज भी हो
मैं प्रमथ्यु हर क्षण
यातना में खुश रहूँगा
मंजिल पाने के लिए।

द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परम्पराएँ सुनें

सुनो! द्रोण सुनो!
एकलव्य के दर्द में सनसनाते हुए घाव को
महसूसता हूँ
एकबारगी दर्द हरियाया है
स्नेह नहीं, गुरु ही याद आया है
जिसे मैंने हृदय में स्थान दिया
हाय! अलगनी पर टँगे हैं मेरे तरकश और बाण
तुम्हीं बताओ कितना किया मैंने तुम्हारा सम्मान!
लेकिन! एक बात दुनियाँ को बताऊँगा

तुम्हीं ने छलकर
दान में माँगा अँगूठा
यह विघ्न नहीं लाऊँगा
सच कहता हूँ
मेरी भुजाएँ फड़कती रहती हैं
जब किसी शूर-शूरमा को देखता हूँ,
मैं अछूत नहीं हूँ
नहीं हूँ
नहीं हो सकता जानता हूँ
तुम्हीं ने बताया था गुरु
'कोई नहीं अछूत होता है जन्म से
यहीं हम बनाते हैं
अन्धे स्वार्थ में लीन हो
मैं भी तो मानता हूँ तुम अछूत नहीं हो
लेकिन स्वार्थ के वशीभूत हो कहता है अछूत हो।
मेरी रग-रग तुम्हारी गुरु भक्ति की टकराहट से
गद्गद् है!
मौन हो मैं तुम्हारी गुरु भक्ति को मानता हूँ
तुमने घाव दिए, दर्द दिया
फिर भी मैंने शाप नहीं, वरदान माना

हे गुरु!
तुम्हारी परम्पराएँ अब बहुत दिन तक नहीं चलेंगी
क्योंकि अब एकलव्य कोई नहीं बनेगा
मैं आगाह कर दिया करता हूँ
बनना ही है तो द्रोणाचार्य जैसे गुरु का शिष्य
कोई क्यों बने?
बनना ही है तो डॉ. अम्बेडकर का शिष्य बनो
बाईस घण्टे उन जैसा पढ़ो
गढ़ो संविधान और कानून

धरती काँपती है
 काँपती है, पूरी शक्ति
 जिसके पास छद्म रूप में है,
 सच कहता हूँ
 शिष्य बना मैं
 स्वार्थ में लीन हो कदापि नहीं
 मैं सच को सच मान पूछता था
 अपने भीतर द्वन्द्व से जूझता था
 अब तुम भी जूझते हो
 अभी भी पूरी व्यवस्था द्रोणाचार्य जैसी है,
 द्रोण की परम्परा के पृष्ठपोषक सुनो
 अब और जाल मत बुनो!
 जाल को रहने दो
 अँधेरे की गहन गुफा को घाव सहने दो
 जाओ द्रोण जाओ, दर्द को हरियाने दो
 एकलव्य मैं पहले था, आज भी हूँ
 अब जान गया हूँ
 अंगूठा दान क्यों माँगते हो?
 अभी भी प्रेक्टिकल में पास-फेल की नीति है
 द्रोण! यही तुम्हारी परम्परा की दुर्नीति है,
 परम्पराएँ अच्छी होती हैं या बुरी
 मुझे कुछ नहीं कहना
 मैं सिर्फ
 द्रोण तुम्हारे रास्ते पर चले गुरु से कहता हूँ
 अब दान में अंगूठा माँगने का साहस कोई नहीं करता
 प्रेक्टिकल में फेल करता है
 प्रथम अगर आता हूँ तो, छठा या सातवां स्थान देता है
 जाति गंध टाइटिल में खोजता है
 वह आत्मा और मन को बेमेल करता है
 परम्पराओं को निभाने में

अब कोई विश्वास नहीं करता
जो नई राह पर चलता है, चलने दो
द्रोण अपनी काया को मत कल्पाओ
मैं एकलव्य अब भी वही गुरु भक्त हूँ
जो पहले था
आज भी हूँ।

अन्धेरे के विरुद्ध

अब मैं छटपटाता रहा हूँ
तुम तो खुश हो न
मेरी रोशनी दो, दो! मत दो?

गहराने देता हूँ दर्द
आखिर रोशनी मेरी ही है न?
तुमने कितनी सहजता से माँग लिया था
आँखों की रोशनी को
मैंने बिना हिचक दिया था
ताकि तुम्हें कहीं परेशानी न हो
न कुत्ते नोचें
न कोई चोर लवार सोचे
अब नितरा-नितरा गाते हो गीत
ओ! दर्द देने वाले मीत
तुम्हारे आँखें हैं
पर पैर नहीं
मेरे पास पैर हैं पर आँखें नहीं
बहुतों को मैंने पार किया है
अपने कन्धे पर
आओ तुम भी मेरे कन्धे पर बैठ जाओ
तुम रास्ता बतलाओ न!

नहीं बताओगे?
मैं तो लहलुहान जख्म पालूँगा
और तुम! पर हो जाओगे
क्योंकि तुम मेरे कन्धे पर रहोगे
मेरी आँखों की रोशनी को
तुमने जलाकर छितरा दिया
सिर्फ बचा रह गया
गठ्ठर ढोने वाला कन्धा
मेरा कन्धा दुःख जायेगा
जब महसूस करने लगूँगा
रास्ता बताओ, नहीं बताओगे?
तुम्हें बीच नदी में भी गिरा सकता हूँ
जहाँ बहती है आग की नदी
मुझे रोशनी दो
तुम्हीं ने छीन ली थी बार-बार
मेरी आँखों की ज्योति ।

राजमणि मांझी 'मकरम'

केवल अपने लिए

मैं स्वार्थी हूँ
अपनी बीबी की गांठ खोलकर
लूट लेता हूँ
उसकी बची-खुची अस्मिता

जबरन उधार माँगता हूँ
उस बनिए से
जो रोज खीजकर मुझे भगा देता है
उधार देने से इंकार करता है
मगर अपने स्वार्थ के लिए
हाथ जोड़ लेता हूँ
अपनी बेटी को फुसला कर
उसका संदूक माँगकर
चुरा लेता हूँ उसके कुछ सपने
सहेजे हुए कुछ अरमान
और उसके छोटे से भविष्य पर
पानी फेर देता हूँ

बेटे का गुल्लक फोड़ने में भी
मैं नहीं हिचकिचाता
जहाँ से भी हो कैसे भी हो
अपना स्वार्थ पूरा कर लेता हूँ

भले ही उसके लिए / कितनी गालियाँ
कितनी ही लानतें सुननी पड़ीं
पर अपना स्वार्थ बटोर लेता हूँ।

इसी से नाराज हो जाता हूँ मैं

गरीबी को पान की तरह
चबाकर खाने वाले / ओ सफेदपोश
किस कदर चबाकर थूक देते हो
जिन्दगी का रंग
इसी से नाराज हो जाता हूँ
मैं और मेरा सर्वहारा वर्ग
और टूट जाता है सभ्यता के आगे
सारा का सारा वहशीपन

इस तरह समाज को सिगरेट की तरह
न पिया करो कम से कम / और धुआँ
देश के मुँह पर न उगला करो

क्या पुरुषार्थ इसी में है कि
और को चूना लगा कर
तम्बाकू की तरह मसल डालो?
और जीवन का नशा
उतरा भी न रहे
स्कॉच की तरह रस्मों की सील / तोड़ दो?
बोलो आदमियत के ठेकेदार
क्या तुम्हें रडस नहीं लगेगा
जो हर वक्त विदेशी वस्तु
करते हो इस्तेमाल?

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

कौन हैं, हम तुम

शब्द की यात्रा में
निकले कौन हैं हम तुम?
समय का परिवेश
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द किसी के
गुनगुनाते रहे भौरे से
फिर भी मौन हैं हम तुम

शब्द किसी के
चमचमाते भोर के तारे से
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द की छांव में
पले-बढ़े
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द किसी के
थिरकाते रहे वीणा के झंकृत तार-से
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द किसी के
सहलाते रहे कनुप्रिया की मनुहार से
फिर भी मौन हैं हम तुम

शब्द के रचाव में

सजे-सँवरे
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द किसी के
इठलाते रहे रंग-बिरंगी तितली-से
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द किसी के
धमकाते रहे कड़कती बिजली-से
फिर भी मौन हैं हम तुम
शब्द के बिखराव में
सम्भले-गिरे
बुलबुलाते रहे बीसवीं सदी-से
फिर भी मौन हैं हम तुम

प्रश्न यही है आज
यक्ष-सा मेरे सामने
बोलो तो कौन हैं हम तुम
देव दानव मानव
हम तुम
बोलो तो कौन हैं हम तुम
देव दानव मानव
हम तुम
बोलो तो कौन हैं हम तुम?

व्यथा-कथा

समय-समर की
व्यथा-कथा क्या सुनाएँ
बरामदे में टंगे पिंजरे के तोते-सा क्या दुहरायें
साथी छूट गए सब
जीवन-वृत्त बनाते

यह जीवन भी लुटता जाता है
अपने ही हाथों
अरमानों की चिता सजाते
अंगुलियों पर गिन-गिन कर
अजपा जाप-सी दोहरायी गयी बातें
रहती हैं मिलती खुशहाली के बहाने

सनातन संस्कृति-सभ्यता की गरिमा
आश्वासनों की जूठन
धरती की कोख कुरेदती
बनाती बड़ा-सा गड़ढ़ा
गिट्टी पीसने की मशीन-सी
भूख
दिन-रात पीसती पसली-पसली
अंधेरी गलियों में रेंगती
बच्चों-सी आँख मिचौनी खेलती
जलते रबर के टायर-सा
कसैला धुआं छोड़ती गरीबी
आस-पास मँडराती है मचली-मचली
बाँझ बस्ती में

यहाँ-वहाँ उग आई कुछ झोपड़ियाँ
गाँवों में धुत पड़ी मानव आकृतियाँ
जिनकी हथेली की रेखाएँ भी चुप
आँखों में सुरंग-सा अंधेरा घुप्प
सहते रहे जो सदियों का सन्ताप
तन पर मन पर शास्त्र-शस्त्र के अनंत घाव
योजनाओं के परनालों में करोड़ों का स्राव
फिर भी ये
जहाँ के तहाँ खड़े हैं

निर्माण में सीना तान कर अड़े हैं
कविताओं की देगची में पकाये भात की
खुरचन बचाओ
आक्रोश से तनी नंगी बाँहों को न्याय
दिलाओ
इनकी व्यथा-कथा के गीत ही न गाओ
बस गीत ही न गाओ
मीत बनाओ मीत बनाओ!

सवाल सत्ता की सहभागिता का

दोस्त! अखबारों से मिल रहे
हत्या बलात्कार और आगजनी के समाचार
घर-घुसा दूरदर्शन इन घटनाओं पर
करता नहीं तनिक भी विचार
हाँ आँखों के अँधेरे में उगा देता है कल्पवृक्ष
कामधेनु बाँधकर परोसता है स्वादिष्ट व्यंजन
धँसी-आँखों फटी-बड़ी वालों के पास नहीं कोई मंजन या
'गंगा से नहाना तो दिन बने सुहाना' का विज्ञापनी सपना
जिन्हें न मिल सका पीने को पानी
सिर छुपाने को घर अपना
धर्म के फतबे महज कंकाल
धर्मनिरपेक्षता के बहाने मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारे
रोज ही बजाते रहते व्यर्थ अपने-अपने गाल

दोस्त! तुम अगर बैठे रहे
बुजदिलों की भीड़ बन कर
इस देश में इन्क्लाब कभी न आ पायेगा
पट्टियाँ बाँधे रखोगे अगर आँख पर
भ्रष्टाचार देश को निगल जायेगा

इसीलिए कहता हूँ
दोस्त! विस्तार करो
गुढ़ो गुनो जुटो
समय को देखो
कब तक सदियों के आर-पार
झूमते रहोगे निर्विकार महुए की मस्ती में
आग लगे चाहे घर जले
गाफिल रहोगे गीत-संगीत की बस्ती में!

दोस्त! मुखौटे न लगाओ
कथनी करनी की दूरी मिटाओ
चौंको मत
ये किसी और से नहीं
कह रहा हूँ मैं स्वयं अपने से अपनों से
मैं अपने आप जाग उठता-सा सहमा-सा
याद आती अल सुबह चाय पर मण्डराती भाप
याद आ गये वे दिन वे लोग
नाइन्साफी के खिलाफ लगाते बहुत से नारे
देखते ही देखते
परिन्दों की तरह लुट गये पिट गये
हुए पिंजरे में कैद
'अप्प दीपो भव' रह गया
इक चीख बन कर
जाने किसकी इन्तजार में नाव किनारे लगा कर
बैठे हैं हाथ पर हाथ धरे
मेरी जमात के लोग
जबकि
पानी पहुँच चुका है गर्दन तक

दोस्त! तुम सोच रहे होगे

यह आदमी है या खुली किताब
मिलते ही जिससे हुआ मोह-भंग
टूटा ख्यालों का सैलाब
ऐ दोस्त! समय रहते समझो
अब तेल नहीं रहा
खुद को निचोड़े बिना जलेगी नहीं बाती
सत्ता-सम्पत्ति-सम्मान की भी नहीं होगी
भागीदारी
'अप्प दीपो भव' का मंत्र नहीं होगा
सम्भव
धरती पर भी नहीं खिंच पायेगा कोई
नक्शा
बस मेरे दोस्त! याद रखना
स्वतन्त्रता समानता बन्धुता और सामाजिक न्याय
'है हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार'
हम अनार्य हैं आदिम महान्
इसलिए लेकर ही रहेंगे
पुरखों का खोया हुआ सम्मान!

छटपटाता कविता कबूतर

अतीत को गले से लगाए
यह वर्तमान
हमारी आँखों में धूल झोंकते हुए
भागलपुर पगड़ीहा और कुम्हरे में
एक घायल कहानी लिखता रहा
जिसके पन्ने
पन्ने-पन्ने होकर
जीवन की सड़क पर बिखरते रहे
शास्त्र-शस्त्र के सहस्त्रों फणवाले सिरफिरे काले नाग

बारम्बार डँसते रहे हैं
जातीय ऊँच-नीच का जहर
मनुष्य के शरीर में फैलाते रहे हैं
और आम आदमी
न जाने कहाँ-कहाँ दम तोड़ता रहा

‘अहम ब्रह्मास्मि’ का स्वरूप होकर
भी वह
कीचड़-गंदगी के विराट आंगन में
करता रहा है वृक्षारोपण
अज्ञात की तुलसी रोपता रहा है

लेकिन
जो जल में लहरा-सा विद्यमान
वह गतिमान
संवेदना का अंकुर कहीं छूट-सा गया है
आदमी के अन्तर में रुठ-सा गया है
परकटे कबूतर-सा छटपटाता
मेरा कविता कबूतर कराहता
वर्तमान परिवेश में
अस्मिता के लिए चीखता-चिल्लाता
अब कलम से कतराने लगा है
और सजाने लगा है तीरों के स्वप्न!

ओ नारी, समता की सहपाठी हो तुम

ओ नारी
समता की सहपाठी हो तुम!
अनेक महान् सम्बोधन दिए तुम्हें
पर दिया नहीं

तुम्हें निर्णय का अधिकार
तुम्हें रिश्तों-नातों शृंखला से जकड़ा
शस्त्र और शास्त्र का भय दिखलाकर

जो पाँव तुम्हारे साथ चलने की खाते हैं कसम
वे ही तुम्हें टुकराते
जो हाथ तुम्हारा हाथ थामते
वे ही गला दबाते
फिर भी ओ नारी
अनन्त विसंगतियों-विकृतियों के बीच
पत्थर पर उगती
दूब-सी उगती रही हो तुम!

रवीन्द्र भारती

शम्बूक का शाप

मर्यादा पुरुषोत्तम राम!
त्रेता में निर्दोष तपस्वी शम्बूक का
अकारण वध करके तुम्हें क्या मिला?
आज कलियुग में उसी अभिशाप से
सैकड़ों शम्बूक और सहस्रों एकलव्य
नर्मदा-ताप्ती की घाटियों
और विंध्य-सतपुड़ा की गुफाओं में/निरंतर तपस्यारत हैं
सहस्राब्दियों पूर्व रेवा तट पर
अकारण बहाया गया अनार्यों का लहू
आज पूरे हिन्दू समाज से/प्रतिशोध के लिए बेचैन है
और सुनो! ये आरक्षण की आग भी
मैंने ही लगाई है
जब तक तुम्हारा नपुंसक हिन्दू समाज
निर्दोष हरिजनों और मूक गिरिजनों के
बूढ़ों-बच्चों और महिलाओं को/यूँ ही जिन्दा जलता रहेगा
याद रखना मुझ तपस्वी शम्बूक का
रक्तिम अभिशाप रंग लाता रहेगा
यूँ ही खून के बदले
खून बहाता रहेगा।

त्रेता के शूद्र तपस्वी शम्बूक ने ही द्वापर में बहेलिया बनकर श्रीकृष्ण की पगथली में बाण मार कर श्रीराम से त्रेता युग का प्रतिशोध लिया था।

ठकुर दास 'सिद्ध'

बात ठकुर की

गाँव ठकुर का, कुआं ठकुर का
घर जो अपना था, हुआ ठकुर का
सर कटाना हो, तो उठा सर अपना
सर सलामत, जो पाँव छुआ ठकुर का
गाँव ठकुर का, कुआं ठकुर का

खेत ठकुर के, लोग ठकुर के
अपनी मेहनत से लगे, भोग ठकुर के
अपने आंसू पे ठहाका उसका
लिखे किस्मत में, भले योग ठकुर के
खेत ठकुर के, लोग ठकुर के

राज ठकुर का, ताज ठकुर का
अपनी चमड़ी से बना, साज ठकुर का
उसके इशारे पर नाचो तो खैर अपनी
वर्ना नौंचेगा बदन, बाज ठकुर का
राज ठकुर का, ताज ठकुर का

जीत ठकुर की, बात ठकुर की
अपनी इज्जत से सजे, रात ठकुर की
सहो उसके सितम, चुपचाप सहो
मुख खोला तो पड़े, लात ठकुर की
जीत ठकुर की, बात ठकुर की

नमक

कहते हैं
समुद्र मंथन में
चौदह रत्न निकले थे
मालूम नहीं उन चौदह रत्नों में
नमक भी था या नहीं समुद्र के गर्भ से निकला
यह वह अनमोल रत्न है रोटी में डालकर
जिसे खिलाया जाता है नमक हलाली का
हवाला देकर गुलाम बनाया जाता है।

लक्ष्मी नारायण सुधाकर

छन्द

(एक)

जहाँ तक सवाल है शोषितों के हाल का
फंसे हुए सदियों से शोषकों के जाल में
निगल न पाए पर छोड़ भी तो नहीं रहे
पिसे जा रहे हैं क्रूर काल ही के गाल में
ऊँच-नीच, छूत-छात, जाति-पाति कीच-बीच
वारि बिन मीन अकुलाति जिमि ताल में
'सुधाकर' स्वतंत्र भले भारत हुआ है बन्धु
शोषित स्वतंत्र जाने होंगे किस काल में।

(दो)

सदियों से शोषित-प्रताड़ित दलित जन
दासता की बेड़ियों में बँधे बिलखाते थे
अस्पृश्य - अंत्यज - अधर्म धर्म शास्त्र कहे
अधिकार-वंचित से विवश अकुलाते थे
विद्या से विहीन धनहीन दीन पंगु बने
पशुओं के तुल्य द्विज उनको सताते थे
'सुधाकर' अम्बेडकर बाबा ने जगाया उन्हें
स्वाभिमान जगा छुटकारा दिलवाते!

गीत

बलिदान त्याग के बिना देश का मिट सकता अनुपात नहीं है
भ्रम अतीत का मिट जाने से कम होता प्रताप नहीं है

निर्भय होकर निर्दयता को करुणा की भाषा सिखवा दो
मलिन पुलिन को पावन कर दो गंगा के जल से नहला दो
सागर का मंथन कर डालो, अमृत-घट को खोज निकालो
छलक रहा हो जहाँ हलाहल शिवशंकर बनकर पी डलो
बलिदान-त्याग के बिना देश का मिट सकता अनुपात नहीं है
भ्रम अतीत का मिट जाने से कम होता प्रताप नहीं है

अंगारों पर चलना होगा युग में परिवर्तन लाने को
झंझावातों के आघातों में स्वच्छन्द गीत गाने को
ऊँच-नीच आडम्बर को भस्मसात अब करना होगा
युग-युग का दासत्व मिटाकर समता-सागर लहराने को
किए बिना उपचार रोग का मिट सकता संताप नहीं है
भ्रम अतीत का मिट जाने से कम होता प्रताप नहीं है

स्वाभिमान भर दो प्राणों की आहों का संसार नहीं हो
आँखों में हो चमक सभी के आँसू की जलधार नहीं हो
वह जीवन भी क्या जीवन है जिस जीवन में प्यार नहीं हो
वह मानव भी क्या मानव है जिसे कोई अधिकार नहीं हो
मेघ-मल्हरो के गाने से मरू का घटता ताप नहीं है
भ्रम अतीत का मिट जाने से कम होता प्रताप नहीं है

जहाँ विषमता का ताण्डव हो समता की सरिता जहरा दो
दरिद्रता की जहाँ दरारे धन-कुबेर का कोष लुटा दो
निपट-निरीहों का सम्बन बन शक्ति संगठित कर पहरा दो
मानवता का कुन्दन हर लो कोलाहल आक्रोश मिटा दो

भले पुरातन अथवा नूतन भूल सुधारो पाप नहीं है
भ्रम अतीत का मिट जाने से कम होता प्रताप नहीं है

सिंहावलोकन

बध करने 'शम्बूक' तुम्हारा फिर से राम चला है
सावधान! 'बलि' भारत में युग-युग से गया छला है
दम्भी-छल-कपटी द्विजाचार अब तक वह शत्रु हमारा
'एकलव्य' अंगूठा काट रहा वह 'द्रोणाचार्य' तुम्हारा
'कालीदह' में कृष्ण चला फिर से उत्पात मचाने
'नागों' की बस्ती को 'अर्जुन' फिर से चला जलाने
'पुष्यमित्र' कर में नंगी लेकर तलवार खड़ा है
'वृहद्रथ' हो जा सजग, अचेतन अब तक रहा पड़ा है
'तक्षशिला' हो गई तहस पर 'तक्षक' नहीं मरा है
वह 'शशांक' मिट गया किन्तु यह बोधिवृक्ष हरा है
सदियों से कुचला है हम को फिर भी शेष अभी है
काश्मीर से कन्या कुमारी तक अवशेष अभी है
'शुंगवंश' के छल-कपटी शासन का अन्त निकट है
होगा नया 'महाभारत' पहले से अधिक विकट है
वह अतीत की रीति बेलची-काण्ड और पिपरा है
पूर्व नियोजित 'छिडली-सादू पर' का काण्ड खरा है
'टाईगर अशोक' है अमर शहीदों में लिख नाम गया है
आगरा-काण्ड से जगा कौम को कर शुभ काम गया है
दलितों के जीवन में सब करते खिलवाड़ रहे हैं
खून बहाकर दलितों का फिर झंडा गाड़ रहे हैं
वे ही आग लगाते, वे उसे ही बुझाने आते हैं
भस्मसात् हो जाने पर घड़ियाली अश्रु बहाते हैं
दोस्त और दुश्मन की कर पाना पहिचान कठिन है
नेता - अभिनेता प्राणों का लेता यह दुर्दिन है
'जनमेजय के नाग-यज्ञ' की अन्तिम यह झांकी है

जनमेगी जय कभी नहीं अब 'तक्षक' बाकी है
'मनुस्मृति' का वह विधान अब और नहीं चल पाएगा
रुका न अत्याचार तो दामन छूट सब्र का जाएगा
शक्ति-परीक्षा आज तुम्हारी जागो दलितो
विजयश्री पग चूमेगी, मत भागो दलितो
शिक्षित और संगठित हो ललकारो दलितो
अपने पुरखों का धर्म-बौद्ध बन तारो दलितो ।

आजाद हुआ बस लाल किला

सामन्तों-पूँजीपतियों की जो मिली भगत से काम हुआ
सत्ता-परिवर्तन का सौदा करने पर कत्लेआम हुआ
हिंसा-नफरत पर रखी गई आजादी की आधारशिला
आजाद हुआ लाल किला

दो चार चमन में फूल खिले कहते ऋतुराज बसन्त हुआ
ठूठों पर नजर नहीं डाली जिनके जीवन का अन्त हुआ
परकटे परिन्दों से पूछो जिनका धूँ-धूँ कर नीड़ जला
आजाद हुआ बस लाल किला

पीढ़ी-दर-पीढ़ी बीत गई बंधुआपन में बेगारी में
रूप गई उमर धन्नासेठों की टहल में तावेदारी में
तुम कहते आजादी आई हमको न अभी तक पता चला
आजाद हुआ बस लाल किला

आजादी आई महलों में झोपड़पट्टी में अंधकार
भूखे-प्यासे तन से जर-जर कंकालों का है चीत्कार
शोषक ने सिंहासन पाया शोषित को नहीं स्वराज मिला
आजाद हुआ बस लाल किला

फांसी के तख्ते पर चढ़कर जिस आजादी के पढ़े छन्द
'बिस्मिल' की वह आजादी तो कोठी-बंगलों में हुई बन्द
भगत सिंह-शेखर-सुभाष के अरमानों को धूल मिला
आजाद हुआ बस लाल किला!

जयप्रकाश कर्दम

मेरी चाह

पिघलाकर भाग्य और भगवान की छुट्टी
खिलाकर निष्काम कर्म की अफीम
कुन्द किया गया है/मेरी चेतना को
किया गया है मुझे/निस्तेज, निष्प्राण
मेरी जिन्दगी के अक्स पर
अंकित है पीड़ा और / यंत्रणाओं के निशान
ये निशान टीसते हैं
कशिशते हैं चीखते हैं
कोसते हैं मेरे अज्ञान/और भोलेपन को
मेरे संयम
सहनशीलता पर चीखते हैं
असह्य हो गया है/अब यंत्रणाओं की
आग में जलना
उपेक्षा और अपमान के/अंगारों पर चलना
असह्य हो गया है/अब पीना घृणा का जहर
स्वीकार नहीं मुझे अब/साँझ के सूरज का ढलना
मैं भोर के सूरज सा
उदय होना चाहता हूँ
अन्धेरों से
निकलना चाहता हूँ
बहुत भटका हूँ/विभेद और अन्याय की/गलियों में
मैं समता के राजपथ पर

चलना चाहता हूँ
मैं घृणा नहीं/प्यार चाहता हूँ
हिंसा का नकार चाहता हूँ
मैं विद्वेष नहीं
सामंजस्य चाहता हूँ
बर्बरता और दमन का
प्रतिकार चाहता हूँ
मैं जेठ की लू नहीं
सावन की बयार चाहता हूँ
भेद-भाव का पतझड़ नहीं
बन्धुता की बहार चाहता हूँ
मैं पशुता का जंगल नहीं
मनुष्यता का संसार चाहता हूँ।

अम्बेडकर की संतान

हड्डियों का ढांचा सा दिखने वाला
'हरिया'
जानता है कि वह/रूग्ण नहीं है
उसे/श्रम और सन्ताप ने तोड़ा है
निस्तेज निरूपाय सा पड़ा
'हरखूबा'
जानता है कि वह/अक्षम अपंग नहीं है
वह/बर्बरता और बेबसी का
शिकार है
आँखों में आँसुओं के/समुद्र को छिपाए
सहमी-सिमटी सी
'कृष्णा'
जानती है कि उसने
अपने जिस्म का सौदा नहीं किया

उसे/जालिम दरिन्दों ने लूटा है/
जेल के सीखचों के पीछे
छटपटाता, कसमसाता
मंगल
जानता है कि वह/चोर डकैत या हत्यारा नहीं है
उसे/झूठे केस में फँसाया गया है
यही था उसका अपराध कि
उसने उठायी थी
जुल्म और शोषण के खिलाफ/आवाज
नयी नहीं हैं ये घटनाएँ
सदियों से यही होता आया है
हरिया हरखू और मंगल के साथ
नोचते रहे हैं
कृष्णा के जिन्दा जिस्म को
भेड़िए, हैवान!
दिन की दोपहरी में
नृशंसता से आग में
झोंके जा रहे दलितों और उनके
मासूम बीबी बच्चों के
चीत्कार से
गाँव की भरी पंचायत के सामने
जबरन नग्न की जा रही हैं युवतियों के
बेबस विलाप से
कांपती रही हैं दिशाएँ
सिहरता रहा है इतिहास
पर
हाय रे भारत महान्
नहीं फटता किसी का कलेजा
नहीं दुखी किसी की आत्मा
इन घटनाओं से

नहीं होता कोई विद्रोह
नहीं उठता यहाँ/न्याय समता और भ्रातृत्व का
तूफान
लेकिन आज
मंगल की छटपटाहट और आक्रोश
देने लगे हैं आभास
कि अम्बेडकर की सन्तान अब और नहीं सहेगी
जुल्म और अत्याचार
नहीं रहेगी मौन
कृष्णा के आँसू/हरखू की बेबसी
हरिया के सन्ताप का लेगी हिसाब
तोड़कर अन्याय और शोषण की/जंजीरों को
रचेगी नया इतिहास!

आज का रैदास

शहर में कालोनी
कालोनी में पार्क
पार्क के कोने पर
सड़क के किनारे
जूती गांठता रैदास
पास में बैठा उसका
आठ वर्ष का बेटा पूसन
फटे-पुराने कपड़ों में लिपटा
अपने कुल का भूषण
चाहता है वह खूब पढ़ना और
पढ़-लिखकर आगे बढ़ना
लेकिन लील रही है उसे
दारिद्र्य और दीनता
घर करती जा रही है

उसके अन्दर हीनता
यूँ उसका नाम
सरकारी स्कूल में दर्ज है
लेकिन गरीब रैदास के लिए
वहाँ का भी बड़ा खर्च है इसलिए
कभी किताब, कभी कापी और
कभी कपड़ों के अभाव में
नहीं जा पाता है पूसन प्रायः स्कूल
और आ बैठता है अपने पिता के पास
टाट की छाँव में
वहीं पर आकर रुकती हैं
कई पब्लिक स्कूलों की बसें, और
उनमें से उतरते हैं
रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे-धजे
कन्धों पर बैग और
हाथों में 'वाटर बोटल' लटकाए
कालोनी के संभ्रात लोगों के बच्चे
जीवन की सच्चाइयों से अनभिज्ञ पूसन
मायूसी और दीनता से
अंग्रेजी में किटर-पिटर करते
इन बच्चों को देखता है
और अपने बाप से पूछता है
पिताजी! क्यों नहीं बनाते तुम भी
मेरे लिए...इनके जैसे कपड़े
क्यों नहीं भेजते मुझे भी
इन ही जैसे स्कूल?
सुनकर चुप रह जाता है रैदास
लेकिन, हिल जाती है
उसके मस्तिष्क की चूल,
छलनी कर देते हैं कलेजे को

लाचारी और बेबसी के शूल।

उसकी आँखों में
भर आता है पानी, और
चुप्पी कहती है
अभाव और उत्पीड़न की कहानी?
उसके अन्तर में उठती है
एक टीस, और
विकल कर देती है बेदना
और विक्षिप्त होने लगती है
उसकी सारी चेतना
किंकर्तव्यविमूढ-सा वह
कभी हँसते-खिलखिलाते और
कीमती कपड़ों में चमचमाते
इसी सामंती बच्चों को
और कभी अपने पास बैठे
चमड़े के टुकड़े
पॉलिस की डिबिया और
ब्रुशों को उलटते-पुलटते अपने
नंगे-अधनंगे बेटे को देखता है
विवशता से व्याकुल हो
अपने मन को मसोसता है
अपनी भूख और बेबसी को
कोसता है, और
ईर्ष्या, ग्लानि और क्षोभ से भर कर
व्यवस्था के जूते में
आक्रोश की कील
ठोक देता है!

डॉ. प्रेमशंकर

अम्बेडकरीय कविता

(एक)

वर्ग संघर्ष और/ जाति संघर्ष में
अन्तर केवल मनुवादी और
अम्बेडकरवादी सोच का है
वर्ग संघर्ष का 'वाम'
माक्स के ऊपर मनुवादी
वैचारिकता को पाले हुए है
और अम्बेडकरवादी वैचारिकता
'पलवल' को
आदमी की गरिमा से
साक्षात्कार कराने का।

(दो)

अम्बेडकर की मूर्ति
आक्रोश के पर्याय नहीं
यह तो शेरगढ़ी की
अस्मिता का दर्शन है
पुलिसिया अत्याचार
मानव अधिकारों की व्याख्या
कई सदी से करते आ रहे हैं
आज अन्तर केवल पुलिस के
नये प्रशिक्षण के

अभ्यास का है
या वैचारिकता का
यह तो अम्बेडकर की मूर्ति ही
तय करेगी।

(तीन)

उत्तर आधुनिकता
और उत्तर प्रदेश
दोनों के बीच में
पड़ा है आवांटित
एक बंजर खेत
ना पट्टा दिया
और न देंगे
कागजों पर रपट लिखकर
आश्वासन
एक अम्बेडकर की मूर्ति
हवा में स्थापित कर देंगे
वोट की चोट
मूर्ति को साकार करेगी
जमीन हमें अपने-आप वरेगी।

(चार)

हमने युद्ध
खेतों-खलिहानों और/मैदानों में लड़ा है
ड्राइंगरूम के अन्दर/बैठकर हिजड़ों-सा
काल्पनिक युद्ध नहीं
आज हम मूर्तियों का युद्ध/लड़ रहे हैं
बंजर जमीनों के
ऊपर/उसे जरखेज बनाने के लिए
अपने बेटों का बलिदान देकर

ताकि
संस्कृति का दोगलापन/फिर कभी भी
इस जमीन पर जड़ें न जमा सके
और किसी गरीब अछूत बन्धुआ
मजदूर का पीढ़ी-दर-पीढ़ी
शोषण न कर सके
साहित्य, संस्कृति और धर्म की
दुहाई देकर।

(पांच)

वोट की चोट
अछूतों के लिए है
किसी और के लिए नहीं
जमीन किसी और के लिए है
अछूतों के लिए नहीं?
फिर कैसे बाबा साहेब की मूर्ति
लगेगी?
नयी संस्कृति कैसे उगेगी?
सवाल करो
नकली मसीहा से।

(छः)

चंगेजखान ,
आधी शताब्दी के बाद
महाराजा बना था
और आज भारतवर्ष में
आधी शताब्दी तक
औरत को नंगा करके
गाँव और शहर में
घुमाया जाता है

अन्तर मनुवादी सोच का है
या आधी शताब्दी की सोच का?
कौन इसका उत्तर देगा?

(सात)

अछूतों को
हिन्दू-मुसलमान
दोनों ही छल रहे हैं
दोनों ही चूस रहे हैं
बलात्कार हो या
नंगापन
दोनों ही अपने आप
अछूतों को मारने की
साजिश में
अपने-आप मर रहे हैं!

(आठ)

उनका नंगापन
कब नंगापन दिखा जाए
यह सवाल झण्डे-सा फहरा रहा है
अछूत मर रहा है
पिस रहा है
नंगा चौराहे पर पुलिस से
पिट रहा है
असहाय गाँव खेतों में
अत्याचार सह रहा है
भला प्रजातंत्र में
ऐसा क्यों हो रहा है?
प्रतिक्रियावादी अपने पीछे क्यों
एक भयानक इतिहास बो रहा है।

वे सभ्य हैं

वे
सभ्य हैं
आदमी से
हाथ मिलाने के बाद
वे
हाथ धोते माँजते हैं
और फिर
मुस्कुरा कर कहते हैं
'हम एक हैं'
फिर हाथ धोते हैं
ताकि,
हाथ में आदमी की
'जाति' न छप गयी हो।

अछूत

अछूत
एक बिफरा हुआ घोड़ा है
जिसे तुम
अपने स्वार्थ के लिए
सुविधाओं की लगाम
प्रताड़ना की सैंटी
और
सुविधाओं के चारे से
सदैव साधते रहे हो!

परन्तु अब

पहले लोग लतिया दिए जाते थे
या लठिया दिए जाते थे
फिर लोग गलिया दिए जाते रहे
छुआछूत के खिलाफ
सिर्फ बोलने पर
परन्तु अब
लोग बमिया दिए जाते हैं
इसके ठीक विपरीत
अत्याचारी लोग
मानसिक छुआछूत दिमाग में पाले
सुर्खियाये जा रहे हैं
आदमी का खून चूसने के बाद
कितनी बड़ी तरक्की की है
इस सठियाये हुए
कुसियाये हुए लोगों ने

रत्नेश कुमार

आज का गीत

हमें तो अयोध्या भाये
देश रहे या भाड़ में जाये
विहिप को कुर्सी पे बिठाये
देश रहे या भाड़ में जाये
संधी नमस्ते बोलवायें
देश रहे या भाड़ में जाये
बन्देमातरम् कहलवायें
देश रहे या भाड़ में जाये
लीग से लाग लगायें
देश रहे या भाड़ में जाये

छोड़ो मत

दिन में दाई रात में चटाई
किसने यह काली रीत बनाई
बताओ ताऊ बताओ ताई
दिन में दाई रात में चटाई
जिसने यह काली रीत बनाई
छोड़ो मत उसे लतियाओ भाई ।

मत खा

भात खा लात मत खा
लात-भात साथ मत खा
लात वाले लात मत खा

वाह

अरी वाह री
धर्म की धरा
एक है बैठा/दूसरा खड़ा
अरे वाह रे
हिन्दू का देश
खत्म अहिंसा/हिंसा अशेष!

असम की कविता

असम ने देखा
असम ने पाया
बंगाल आया
गाल में दबाया

असम ने देखा
असम ने पाया
राजस्थान आया
जेबस्थान बनाया

असम ने देखा
असम ने पाया
बिहार आया

विकार लाया
असम ने देखा
असम ने पाया
युवजन उठा
विप्लव आया!

शोक गान

रात रोटी बनी
मेरी देह बोटी बनी
दफ्तर की ओ.टी. बनी
गांधी की लंगोटी बनी
मैं रात रोटी बनी
सुबह चिकोटी बनी
खाट से खोटी बनी
काम की गोटी बनी!

पगार के दिन

चूल्हा चहकता
थारी धिरकती
मुनिया मचलती
पत्नी संवरती
पगार के दिन!

हम होंगे

हमने नहीं पिया
कुतिया का दूध
कि कुत्ते हो जायें

हमने नहीं पिया
डब्बे का दूध
कि डब्बा हो जायें
हमने पिया है
शेरनी का दूध
हम होंगे शेर ही
शेर मिल गये हमें
हम सवा शेर होंगे
हम सवा शेर होंगे!

गीदड़ का गीत

हुआं...हुआं...हुआं
मैं भी हिन्दू हुआ
अब न अजीमन बुआ
अल्लाह से करो दुआ
मैं भी हिन्दू हुआ
हुआं...हुआं...हुआं!

क्यों न?

इस पार राम
उस पार राम
क्यों न बढ़ें भैया
रोज-रोज दाम?
हृदय में रावण
मुँह में राम
क्यों न हो भैया
सुबह में शाम?

मेहतर राजा

मेहतर राजा मेहतर राजा
बना राजपूत राजा का बाजा
मेहतर राजा मेहतर राजा
मेहतर राजा बेहतर राजा
मेहतर राजा मेहतर राजा ।

कलम का कल

आयेगा-आयेगा
कमल का कल
जायेगा-जायेगा
गलत का बल
खायेगा
खायेगा
हरिया का बेटा
गायेगा-गायेगा
जीवन का गीत ।

हेमन्त प्रसाद 'दीक्षित'

सड़क बुहारती हुई औरत

सड़क बुहारती हुई औरत
जानती है कहाँ-कहाँ हैं गद्दे
कहाँ-कहाँ पड़ा है कीचड़
कहाँ-कहाँ छितरे हैं सड़े पत्ते
कहाँ-कहाँ बहाया गया है कुन्ती-पुत्र
कहाँ-कहाँ है फिसलन
कहाँ-कहाँ बिखरे हैं निरोध
और कहाँ-कहाँ थूक गया है सनातन धर्म

सड़क बुहारती हुई औरत
कई हजार साल गंदगी के खिलाफ / छेड़ती है आन्दोलन
और सुस्ताने के लिए बैठकर / जलाती है बीड़ी

रामचरण शास्त्री सोचते हैं
कि उसकी सुलगी हुई बीड़ी की चिंगारी से
भस्म न हो जाएँ कहीं उनकी पोथियाँ

पृथ्वी के समूचे बर्तन को / झाड़-पोछकर
अच्छी तरह चमकाती है
सड़क बुहारती हुई औरत
और रामचरण शास्त्री को चिन्ता है
अपनी दीमक खाई पोथियों की।

बेझिझक

झिझके हुए शब्द का मुँह धुलवाया/ ठीक से आरामकुर्सी पर बैठाया/ताजगी बरकरार रखने के लिए कॉफी पिलाई/ और पूछा झिझक बारे में।

पता चला कि झिझकता रहा शम्बूक का वध करने में/मगर वर्ण-व्यवस्था का क्या होता/पुरोहित चढ़ाए बैठे थे त्यौरियाँ/और उस निरपराध का सिर काटने के सिवाय कोई चारा नहीं था।

झिझकना भी कोई वधस्थल है क्या/और वहाँ ले जाया/जाता है शब्द बकरे की तरह।

झिझक गए तो पुरोहितों का खंजर सौंपने वाले/जिन अखबारों की जलाई जा रही हैं प्रतियाँ।/उनके उगले गए जहर के सामने टिक नहीं पाओगे।

झिझक रहा था अर्जुन/प्रचारित यही किया गया था/हकीकत जो कुछ भी रही हो/एकदम फ्रंट पर विषैले कर्म/के बारे में कहा जा रहा/था कृष्ण द्वारा।

झिझका हुआ शब्द इस बेबाकी से बोला/कि ठिठक गया था वह ऋग्वेद पर ही जाकर/ताड़ लिया गया था तभी/कि बहुत से शैतान ग्रंथ बेमानी हो जाएँगे आगे चलकर।

पुरोहितों ने चीख कर कहा था/साले! शब्द के बच्चे!/उन कलमों के अन्दर क्यों घुसता है जो नहीं चाहतीं/कि जारी रहे हमारा हजारों सालों से चला आया पाखंड/वे भी तो कलमें हैं/और यकीनन बेहतर कलमें है जो मलद्वार में ठोस/और अटके हुए मल के बारे में/कलात्मक ढंग से लिखती रहती हैं।

झिझका हुआ शब्द/अब बेझिझक कह सकता था कि/मुक्तिबोध की कविता के अन्दर फिर प्रवेश किया जा सकता है/सताए गए दलितों को नया सुनहरा सूरज सौंपते हुए।

श्यामलाल शर्मा

उनकी पीड़ा

सुनो, हाँ भाई सुनो
किसुना अछूत
कुछ पढ़-लिख कर कृष्ण
और फिर
आजादी की लड़ाई के दिनों में
कृष्णचंद्र दास कहलाया
और हमारी
मजूरी-चाकरी छोड़कर
ईंटों के भट्टों का
ठेकेदार हो गया
और सुराज के कारण
देखते ही देखते
एक दिन ग्राम सभा का मेम्बर
और फिर प्रधान बन बैठा
और तो और
उसी किसुना अछूत का बेटा
जिसे हम सदा कलुआ कहते रहे
स्कूल में दाखिल हो गया
स्कूल में कलुवा से
कालीचरण दास कहलाया
और फिर कालिज की बड़ी डिग्री लेकर
सरकारी सुविधाओं के तहत

अफसर बन गया
जिस कलुआ का बाप किसुना
कभी हमसे नौकरी-चाकरी माँगता था
उसी का बेटा कलुआ
यानि कि अब कालीचरण दास
सरकारी अफसर बन
कुर्सी पर साधिकार बैठकर
हमारे बेटों से
नौकरी के लिए आवेदन-पत्र लेता है
और गुण-अवगुण के आधार पर
नौकरी देता है
भाई मेरे इस सुराज
की आजादी ने तो बिल्कुल
उल्टा ही खेल जमाया है
पता नहीं क्या होगा इस देश का
कैसा नया जमाना आया है!

चंद्र कुमार वरुणे

यह कविता तुम्हारे ही नाम

कविता लिखने बैठा
और तुम्हारी याद आई
लो
यह कविता तुम्हारे ही नाम

वहाँ देखो एक कोढ़ बैठा है
अनाम बस्तियों के देश की

प्राचीन संस्कृति का प्रतीक
यह कविता उसे दो
वह कविता पड़ेगा नहीं/ अपने जख्मों पर लगाएगा
मरहम की तरह
नहीं तो ऐसा करो/ तुम ही पहन लो
तुम्हारी धोती भी तो/ फट गई है

जब पास होती हो तुम
भोली-भाली मासूम
कविता
तुम्हारे लिए लिखूँ/ यह तुम्हारी अभिलाषा
लो यह कविता/ तुम्हारे ही नाम।

बच्चा ठिठुर रहा है

लो, यह कविता उसे उड़ा दो
कम्बल की तरह
और इसकी गर्मी में देखने दो सपने
कल की सुबह के

उगने वाले सूरज का बछड़ा
उसे ही तो पकड़ना है
और अँधेरे के खिलाफ लड़ना है।

क्रांति का प्रतीक

गहराती काली रात
नगर से दूर
राज-पथ से हटी और अँधेरे से पटी
अनाम बस्तियों के देश की
ऊँघती झोंपड़ियाँ
एक झोंपड़ी से जानवर की नहीं
आदमी के बच्चे की
उभरती है चीख हवाओं में
और डूब जाती है काली रात की गहराई में
बच्चा भूखे पेट पर
सरकंडे-सी टंगड़ियाँ दवा कर सो गया है
रोते-रोते सपनों में खो गया है
रात!
कितनी गुजरी कितनी शेष है
कोई नहीं जानता
न ऊँघती बस्तियाँ
बच्चे की भूख
उसकी माँ न बच्चा
और न ही अनाम बस्तियों का देश

कोई भी नहीं जानता रात कितनी शेष है
कब सबेरा होगा?
बच्चा जाग पड़ता है
भूखा है टटोलता है
नन्हीं हथेलियों से स्तन
जो दूध पिला सकते हैं
सूखे पिलपिले स्तनों को सहलाती है
बच्चे की भूखी नन्हीं हथेलियाँ
स्तनों से श्वेत रक्त निचुड़ने की बजाय
लाल दूध देखकर सोचती है बच्चे की माँ
बच्चे को लेकर गोद में
पिलाते हुए...
बिना बाप का बेटा यह
पूछेगा जब कल जवान होकर
माँ! तुम्हारा दूध सफेद क्यों नहीं था?
क्या जवाब दूँगी मैं
क्या कहूँगी देश के इस कर्णधार को
यह किस क्रांति का प्रतीक है?
गहराती काली रात
नगर से दूर राजपथ से सटी
और अँधेरे से पटी
अनाम बस्तियों के देश की
ऊँघती झोंपड़ियों में से
एक झोंपड़ी से आती है आवाज
और डूब जाती है रात की गहराई में
अनाम बस्तियों के देश में
यही होता है
रात की काली गहराई में बच्चा रोता है
हर रात यही होता!

नीरा परमार

समानांतर इतिहास

इतिहास
राज-पथ का होता है
पगडंडियों का नहीं!
सभ्यताएँ/ बनती हैं इतिहास
और सभ्य/ इतिहास पुरुष!
समय उन बेनाम
कदमों का कायल नहीं
जो अनजान
दरों जंगलों कछारों पर
पगडंडियों की आदिम-लिपि
रचते हैं
ये कीचड़ सने कंकड़-पत्थर से लहूलुहान
बोझिल थके कदम
अन्त तक कदम ही रहते हैं
उन अग्रगामी पूजित चरणों के समान
किसी राजपथ को
सुशोभित नहीं कर पाते

शताब्दियाँ
पगडंडियों से
पगडंडियों का सफर तय करते
भीड़ में खो जाने वाले/ ये अनगिनत कदम

किसी मंजिल तक नहीं जाते
लौट आते हैं
बरसों से ठहरी हुई उन्हीं
अंधेरी गलियों में
जो गलियों
रद्दी बटोरते छीना-झपटी करते कंकालों
कचरों के अंबारों
झुग्गी-झोंपड़ियों के झुके छप्परों से निकलते
सुअरों मुर्गियों के झुंड में से
होकर गुजरती है!

प्रतिरोध

तुम्हारे माथे पर/ यह
भारी डगमगाती विष्ठा की बाल्टी नहीं
तुम्हारी हैसियत है
जो सदियों से
मनुष्य को समाज ने
अपने और तुममें
अन्तर याद दिलाने के लिए रखा है

उनके लिए
यही हैं तुम्हारा वजूद जो तुम्हें अपने और
इस विष्ठा सने झाड़ू
अस्पृश्य बाल्टी/ भिनकती मक्खी में
कोई फर्क महसूस करने नहीं देता
उन सबके लिए
क्या यह कम राहत नहीं
कि तुम
पीढ़ियों से उनके और

उनके पिताओं दादाओं परदादाओं के लिए
बिना व्यवधान प्रतिरोध के
रोज तड़के आती रही हो
बिना सवाल किए
जुगुप्सित बाल्टी कस कर हाथों से भींचे
उस नरक की ओर
बेझिझक बढ़ जाती रही हो
जिसके छुआ जाने भर से
चमड़ी झूठी पड़ जाती है
माथे पर तुम्हारे जब तक यह सनद है
तब तक उनकी व्यवस्था को राहत है कि
तुम्हें किसी
नाम पहचान अधिकार की
परवाह न होगी!
याद रखो माथे पर जब तक
यह भारी डगमगाती विष्ठा की बाल्टी है
तुम्हें अपने और इस विष्ठा-सने झाड़ू
अस्पृश्य बाल्टी भिनकती मक्खी में
कोई फर्क महसूस नहीं होगा!

रामलखन पाल

जिंदगी अपमान की

भरी सभा में,
एक सवर्ण ने दूसरे सवर्ण से
क्रोध में आकर
गाली देते हुए कहा
'चमार कहीं का।'
दूसरे सवर्ण ने पहले सवर्ण से
क्रोध में आकर
मारने को झपटते हुए बोला
'तूने मुझे 'चमार' कहा,
मैं तेरी जबान खींच लूँगा।
पास में ही बैठे / एक अछूत ने
समझाते हुए कहा
'भाई आप तो एक क्षण के लिए ही
'चमार' बनने पर
जान लेने पर तुले हो।
और मैं....?
सारी जिन्दगी ही
अपमान को जीता हूँ
फिर भी किसी की
जान नहीं लेता हूँ।
बस, ऐसे ही घुट घुट कर
जीते हुए भी मरता हूँ।

सोहनपाल सुमनाक्षर

आज भी

कड़कड़ाती बादलों से
कंपकंपा जाता है मेरा दिल कि,
कहीं फिर से
किसी जमींदार का लठ
मेरे ऊपर न बरस पड़े
आज भी
इन बर्फी-सी तेज हवाओं से
रोमांचित हो, पसीने से तर
हो जाता हूँ मैं कि, कहीं फिर से
बेकसूर मुझे
समाज के ठेकेदार किसी केस में
फंसा न दे।
आज भी
सवर्णों की ये गलियाँ-कूँचे
मेरे लिए संविधान की धाराएँ हैं
जिन्हें बिना उनकी इजाजत के
शोधना अपने को दोषी
बनाना है, फिर वे जो भी दंड दें
जानवर की तरह, मुझे स्वीकारना है।
आज भी,
यह गाँव, यह मंदिर, यह पोखर
सब उनका है, और हम हैं उनके

पुश्तैनी गुलाम
जिन्हें उनके इशारे पर सांस लेना है
चलना और उनकी खिदमत करनी है
बिल्कुल चाबी के खिलौने की तरह
चूंकि हम जानते हैं कि
उनके सामने अपनी आजादी का
सवाल उठाना या फिर अपनी मनमर्जी चलाना
अपनी खाल उधड़वाना है।
जिसकी न्याय की अदालत में भी
सुनवाई नहीं।

बाबा ने कहा था

बलि, भेड़-बकरियों की दी जाती है,
कभी शेरों की नहीं
इसलिए बाबा ने कहा
बेटो, शेर बनो, बकरी नहीं
शेर बनोगे तो, तुमसे डरेगा जमाना
फिर तुम पा सकोगे सत्ता, सम्मान, समता
जो दीनता से अभी नहीं है पाना।

सिंह में कुछ विशेष गुण भी होते हैं दोस्तो!
शेर भूखा मर जाएगा, पर घास नहीं खाएगा।
शेर दुश्मन पर टूटेगा, जीवन तक जूझेगा,
पीठ न दिखाएगा, सिर न झुकाएगा।
शेर, भेड़-बकरियों की तरह
झुंडों में नहीं चलता,
अरे शेर तो शेर है,
वह अकेला ही सवा शेर है
वह अपना रास्ता खुद बनाता है,

फिर आगे कदम बढ़ाता है और दूसरों के लिए
अपनी लीक छोड़ जाता है।

जो बलवान है, वह किसी को
'अभय' दान दे सकता है,
जो धनवान है वही किसी को
'धन' दान दे सकता है
जो निर्बल है,
वह दूसरे की क्या रक्षा कर पाएगा?
जो निर्धन है, भूखा है,
वह दूसरों को क्या खिलाएगा?
इसलिए, मेरे दोस्तो
बाबा का कहा मानो
भेड़-बकरियाँ नहीं शेर बनो,
शेर बनोगे तो तुम्हें कभी कोई नहीं सताएगा,
दुश्मन भी तुमसे डरेगा
और तुम्हारी वीरता के गुण गाएगा।

रमणिका गुप्ता

स्पाकटस

मैं अगर तुम्हें कहूँ
कि ब्रह्मतत्व और मनुवाद का
चक्रव्यूह तोड़ने के लिए
तुम बनो अभिमन्यु
तो गलत होगा
वह तो दो अभिजातों की लड़ाई थी
जिसमें तुम नहीं थे कहीं
तुम एकलव्य के पीछे खड़े कहीं
केवल द्रष्टा थे उस विध्वंस के
तुम्हारी भागीदारी नहीं थी
न विजय में न पराजय में
सृजन की तो कोई बात ही नहीं थी वहाँ
हाँ, मोक्ष की बात भले थी
जो तुम्हारे लिए वर्जित था
इसलिए बेमानी था
तुम्हारे जन्म या मरण के कोई मायने नहीं थे कभी
तुम निष्काम सेवा करने के
दायीदार रहे
फल और स्वर्ग की कामना
तुम्हारे हक के दायरे से बाहर रही
इसलिए 'हक' का अर्थ भी नहीं जाना था तुमने
नहीं कहूँगी मैं कि तुम बनो अभिमन्यु

अभिजातों की जमात में होड़ लगाओ
या एकलव्य की तरह
गुरु से धोखा खा जाओ
न ही नाम दूँगी इस ब्राह्मणत्व को
चक्रव्यूह का
चूँकि इसे युद्ध से खत्म नहीं किया जा सकता
इसे खत्म करने के लिए जरूरी है
इंकलाब क्रांति विद्रोह
सोच का विकास और सतत संघर्ष
इसलिए
क्या तुम स्पार्कटस बनोगे?
स्पार्कटस एक ग्लैडिएटर!

ग्लैडिएटर
एक गुलाम
खून देखकर उत्तेजित उद्विग्न
रोमांचित और एक्साइट होनेवालों की
खुशी के लिए
बांहों में हाथों में जांघों में
छुरियाँ बांधकर
आपस में अपने साथियों से लड़कर
खूनों-खून हो
मरने के लिए मजबूर
नवाबों के अखाड़े के
प्रशिक्षित मुर्गे-सा
दो टांग वाला आदमी

तालियों की गड़गड़ाहट में
बियर की चुस्कियों तले
रूमानी मुस्कानों के बीच

अपनी निश्चित मौत के नजदीक पहुँचता
लेकिन जो समझ गया था
जाने का महत्व
समझ गया था आजादी का अर्थ
मुक्ति का मूल्य
एक ऐसे समाज के सपने को
जहाँ न दास होंगे न गुलाम
सब होंगे समान
साधारण जरूरतों वाले
जहाँ न होगा कुछ विशेष न अभिजन न खास
न कोई नस्ल
न कोई जाति न रंग
छोटी-छोटी जरूरतों वाला
बड़ा-बड़ा...बहुत बड़ा समाज
जमीन पर उतारने के लिए
उसने रोम से टकराने की
की थी जुर्रत!

रोम जहाँ दास
आदमी नहीं था इंसान नहीं था
जानवर थे उससे बेहतर
दास रखना
जन्मसिद्ध अधिकार था उसका
अभिजात का दंभ पालता
रोम के सीमा विस्तार को
अधिकार मानता
आजादी की रक्षा का अर्थ
उसके लिए था
दूसरों को अपने अधीन लाने के अधिकार
की रक्षा

स्पाकर्टस
टकराया उसी रोम से!

स्पाकर्टस
रोमनों की स्त्रियों के सपने में छाया
स्पाकर्टस रोमनों की बहसों का विषय
उनकी नींद ले भागा
उनके माथे में खिंची
घनी चिंता-रेखाओं में उग आया
उनकी भृकुटियों में तन गया
और मुस्कराता रहा अंत तक
बिन बोले
मुस्कान और चुप्पी के आदेश देता रहा
बोटी-बोटी कट गया
पर पकड़ा न जा सका
स्पाकर्टस...स्पाकर्टस...स्पाकर्टस
रोम का जर्ज-जर्ज थर्रा गया

रोम थर्रा गया
स्पाकर्टस के उन सपनों से
जिसने हजारों गुलामों के सीने में
भर दिए थे आजादी के सपने
जिसने जगा दी भूख
कि जिसे पेट में पाले
सीने में भरे
लटक गए हजारों गुलाम
टिकटिकी¹ पर
कीलों से ठुके-ठुके

1. टिकटिकीनुमा ढांचा जिस पर कीलों से ठोंककर मृत्यु दंड दिया जाता था।

तीन-तीन दिनों तक
बिना आह भरे करते रहे
तिल-तिल कर आती मौत का इंतजार
सूली से डर कर
आजादी की राह को
मुक्ति के सपने को
अपने निर्णय को
न बदला न धिक्कारा न दुत्कारा
न ही दिया उलाहना
संघर्ष की राह को
जिसका निश्चित अंत था
टिकटिकी

संघर्ष
जिसने शोषण से मुक्ति पाने
नस्ल के जाति के रंग के विभेद
और देश की हदें तोड़कर
इक भीड़ को एक बड़ी जमात में दिया बदल
भीड़
जो भेड़ों की तरह हांकी जाती
रेवड़ की तरह पाली जाती
बाड़ों में रहती बाड़ों में पलती
बाड़ों में मारी जाती मूक
बिना बोले

भीड़ कई नस्लों वाली
भीड़ कई रंगों वाली
कई देशों वाली
कई देशों की भीड़
भेड़-सी

स्पाकर्टस ने बनाया
इस भीड़ का मन
जो मन से अपने को
मुक्त मान जमात् बन गई
अपने पुश्तैनी हथियार ले
चल पड़ी
गुलामी का 'जुआ' काटने
मुक्त-मौन इशारों से संचालित
आँखों-आँखों में पढ़ती अगला आदेश

भाषा के भेद मिट गए
भाषा के ऊपर
मन की बोली के तार एक साथ टनके
दुश्मन के खिलाफ व्यूह रचती
आगे बढ़ती विभिन्न भाषी
पर एक मन वाली जमात्!
रोम जीतकर भी
हारा था, डरा था
टूट-टूट गया था
स्पाकर्टस मर कर भी जीत गया था

क्या तुम बनोगे स्पाकर्टस ?
मनु के मिथक को मिटाने के लिए
खुद रचोगे चक्रव्यूह?

प्रतिरोध

हमने तो कलियाँ माँगी ही नहीं
कांटे ही माँगे
पर वह भी नहीं मिले

यह न मिलने का अहसास
जब सालता है
तो कांटों से भी अधिक गहरा चुभ जाता है
तब
प्रतिरोध में उठ जाता है मन
भाले की नोंकों से अधिक मारक बनकर

हमने कभी वट-वृक्ष की फुनगी पर बैठकर
इतराने की कोशिश नहीं की

हमने तो उसकी जड़ों के गिर्द जमे रह कर
शांति से
समय की शताब्दी काट लेने की चाह
पाली थी सदा
पर
निरंतर बौछारों ने वह भी न माना
बार-बार हमारे जमे रहने की चाह को
टुकराती रहीं
धकेल-धकेल कर
बहाती रहीं धार में/ साल-दर-साल
ठोकरें खाने के लिए
टिकने नहीं दिया हमें
किसी भी पेड़ की जड़ के पास

यह न टिक पाने का अहसास
जब सालता है तो
बौछार से अधिक जोरदार
धक्का मारता है
तब
प्रतिरोध में उठ जाते

156 :: दलित चेतना : कविता

सब मिट्टी के कण
जड़ों को उखाड़ देते हैं हम
नंगे हो जाते हैं वन
और
चल देते हैं नए ठौर खोजने हम
गिर जाते हैं तब
बड़े-बड़े वट-वृक्ष भी
क्या बिगाड़ लेंगी बौछारें हमारा?
हम ठेंगा दिखाते चले जाते हैं
हम तो आदि हैं न
बहने के
हर रोज ठौर बदलने के!
हमने तो नहीं कहा कभी
कि तर्क-हीन बात मान लो हमारी
जब तुम तर्क-संगत बात सुनने को भी
तैयार नहीं होते तो
यह न सुने जाने का न पहचाने जाने का अहसास
हमें मनुष्य माने जाने से भी इंकार
जब सालता है तो
तर्क से भी अधिक धारदार बनकर
काटता है
तब
प्रतिरोध में उठ जाता है
समूह बन कर जन

तब तुम
तर्क-हीन शर्त मानने पर भी
तैयार हो जाते हो
हमें क्या?
हम तो

जीवन-भर तर्क-इतर जीने के आदी हैं
तर्क-तर जीने की बात कब की थी कभी हमने?
अब तो तुम अपनी सोचो अपनी?

गधे का सर

हाथों का हाथी हूँ
पाँव का घोड़ा
सर पे धर दिया है तुमने
घोड़े जैसा सब्र के गधे का सर
कोल्हू के बैल की तरह
आँखों पर बांध दिया तूने चमड़े का चमौटा
ठोंक दी है सोच पे सहनशील नाल

इसीलिए
तुम सबके यहाँ गदहे-सा खटता हूँ
बैल-सा जुतता हूँ

तुमने बताया था
मैं भी हूँ भगवान की औलाद
जो है तुम्हारा भी बाप
पर भाग्य का फल भोगता हूँ मैं
जन्म जन्मांतर से
इसीलिए
बेगारी में जुतता हूँ मैं
और जुतना पड़ेगा भी
चौरासी करोड़ योनियों के खत्म होने तक

पर अब जान लिया है मैंने
भगवान नहीं

मैं बंदर की औलाद हूँ
जो मेरा ही नहीं तुम्हारा भी बाप है
मैंने भाग्य का फल नहीं
तुम्हारी साजिश का फल / भोगा है
तुम्हारी व्यवस्था का जुआ पहन जोता है हल
जिसे मेरे हाथों के हाथी ने ही दिया है बल
मेरे पाँव के घोड़े ने
दी रफ्तार और गति
गधे के सिर ने
मेहनत
बिना सोचे बिना समझे

लादा तुम्हारा बोझा अपने कंधे
अपनी ही गुलामी को माना
अपना भाग्य

तुम चढ़ बैठे बैताल-से
मेरे कंधों पर
सवाल का जवाब देने पर
लटका देते हो उल्टा मेरी अक्ल को
मैं फिर अपने कंधे पर
तुम्हें बैठाने के लिए
लौट-लौट आता

पर
अब नहीं लौटकर जाऊंगा मैं / तुम्हें कंधे पर
बैठाने के लिए वापिस
नहीं ठोंकने दूँगा
सहनशील नाल
अपनी सोच पर!

दिलावन-दिलावन

‘दिलावन दिलावन’ आयु-बाबा होड़
समय बढ़ गया
‘खड़ा नए मोड़’
‘दिलावन-दिलावन’ आयु-बाबा होड़
गुफाओं से निकले तब से वहीं हो
जंगल में जिंदा
रहते अभी हो
तुम्हारी नुमाइश ‘उत्सव’ लगाते
पिछड़ी लकीरों का गौरव बताते
न भाषा सिखाते
न लिपिया बनाते
पीछे समय से तुम्हें ले-ले जाते
‘जंगल का मानुष’ बताते बेजोड़
‘दिलावन-दिलावन’ आयु-बाबा होड़
तीरों से तरकस तेरी सजाते
नाचों से महफिल अपनी रचाते
गीतों के मुखड़े तेरे चुरा कर
तेरी धुनों पे ‘मुद्रा कमाते’
तुझे न सिखाते घटाव-व-जोड़
‘दिलावन-दिलावन’ आयु-बाबा होड़
तेरी जर्मी को भी अपना बताते
तेरी जर्मी को ही कब्जे में लाते
पहचान तेरी दिनों-दिन मिटाते
तुझे बस बताते लगे कैसे गोड़
‘दिलावन-दिलावन’ आयु-बाबा होड़!

1. दिलावन चलो, 2. आयु-बाबा होड़ मर्दऔरत, 3. उत्सव ‘उत्सव’ नाम का सरकारी मेला, 4. गोड़ पाँव

सूरजपाल चौहान

मेरा गाँव

मेरा गाँव
कैसा गाँव?
न कहीं ठौर
न कहीं ठाँव!

कच्ची मड्डिया
टूटी खटिया
घूरे से सटकर
बिना फूस का
मेरा छप्पर
मेरे घर न
कौए की काँव।
मेरा गाँव
कैसा गाँव?
न कहीं ठौर
न कहीं ठाँव॥

उनके आंगन
गईया बछिया
मेरे आंगन
सूअर, मुर्गियाँ
मेरे सिर

उनकी लाठी
बेगारी करने को गाँव ।
मेरा गाँव
कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर
न कहीं ठाँव॥

उनका खेत
उन्हीं का बैल
और उन्हीं का है टियूबैल
'मेरे हिस्से मेहनत आई
उनके हिस्से है आराम ।'
मेरा गाँव
कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर
न कहीं ठाँव॥

ब्याह-बारात का
काम कराते
देकर जूठन बहकाते
जब मरता है
कोई जानवर
दे-देकर गाली उठवाते
दिन-रात
गुलामी कर-करके
थक गए
बिवाई फटे पाँव ।
मेरा गाँव
कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर

न कहीं ठाँव॥

उनका दूल्हा
चढ़ घोड़ी पर
घूमे सारी गाँव-गली
मेरी बेटी की शादी पर
कैसी आफत आन पड़ी
जिन पर आया
घोड़ी चढ़ वो
अलग पड़े हैं
दोनों पाँव ।
मेरा गाँव
कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर
न कहीं ठाँव॥

सीमाओं से परे

अक्सर
सोचता हूँ
बहुत सोचता हूँ
बाल नोंचता हूँ
खीझकर ।

आदमी
हाँ यह आदमी
बड़ा क्यों होता है ?
सुना है
साइंस बहुत आगे हैं
क्यों नहीं होती

ईजाद
कोई दवा
जो रहने दे
बच्चे को बच्चा
न बनने दे
आदमी बड़ा ।

मेरा वायदा नहीं है कोई
दोस्त
लड़ेंगे तो फिर भी
मजहब
जात और सीमाओं से परे
खिलौने और
टॉफियों के लिए ।

तीर और तलवार

सोने की चिड़िया
उड़ कर
न जाने कहाँ
चली गई
दूध की बहती नदियाँ
और
वो घाट
जहाँ शेर और बकरी
पीते थे
पानी एक साथ
जमीन में धंस गए!
राम और रहीम
सियासत में फंस गए ।

हम सब एक हैं
हम सब एक हैं
सुन-सुनकर
कान पक गए
कवि तीर
और तलवार बन गए।

गरीबी का भेद

बेचता नहीं
मिलावटी सामान
व्यापारी बनकर
करोड़ों की रिश्वत
खाता नहीं
मिनिस्टर बनकर
मिलकर दुश्मनों के साथ

नहीं करता गद्दारी
अपने देश के साथ
नहीं बेचता
गुप्त सूचनाएँ
दूसरों के हाथ।

खोलकर दुकानें
मजहब और धर्म की
नहीं करता
धर्म का व्यापार
तरह-तरह के
मुखौटे लगाकर
नहीं करता लूटमार।

श्रेष्ठ कहे जाने वालो!
मैंने तुम्हारी तरह
जिस थाली में खाया
उसमें
नहीं किया छेद
बस, यही है
मेरी घोर गरीबी का भेद।

कलात्मकता के नाम पर

परम्परा का पहाड़ा
रटाने वालो
ऊँचे घरानों के
ढोल पीटनेवालो
रास्ते का
पत्थर बनकर
क्यों मेरे मार्ग को
अवरुद्ध करते हो?
कलात्मकता की दुहाई देकर
क्यों मेरी कलम की स्याही
पोंछना चाहते हो!

हमेशा से तुमने
मेरे सृजन को
अपना कहा है
परम्परा की दुहाई देकर
छला है
और गढ़ा है
गप्पी साहित्य
कलात्मकता के नाम पर।

बात यह है...

बात
न उत्तराखंड की है
न झारखंड की
बात
दल-बदल की भी नहीं है
और न किसी मजहब या धर्म की।

बात
दलितों के पढ़-लिखकर
आगे बढ़ने की भी नहीं है
न बात है
उनके खेल के मैदान में
बाजी मारने की।

बात
मंदिर के
पुजारी बनाने की भी नहीं है
न बात है
पहली ईंट
शूद्र के हाथों रखने वाले की।
बात
सत्ता के खेल की भी नहीं है
न उसका सुख बोलने की।

बात है
'दलित साहित्य' की
कहीं देश की शोषित जनता
जो

हजारों वर्षों से
पौराणिक कथाएँ सुन-सुनकर
सोई पड़ी है
सच्चा साहित्य पढ़कर
जाग न जाए
बंद कमरे में लिखे 'गप्पी साहित्य' की
धज्जियाँ न उड़ जाए।

प्रभाकर गजभिये

बाकल का दलित

हमारे देश का बाकल एक ऐसा गाँव है
जहाँ आज भी दलित चलता नंगे पाँव है
बीच गाँव में चप्पल पहन
घूम सकता नहीं
आनंद के क्षणों में वह झूम सकता नहीं
दलित शोषण के शिकार हैं
सवर्णों का अवर्णों पर पूरा अधिकार है
वर्ण व्यवस्था का बहुत बोलबाला है
आजादी के होंठों पर पड़ा ताला है
आज भी उसे आजादी मिलनी बाकी है
जी हाँ यही मेरे
स्वतंत्र भारत की झांकी है।

बंदूक का जातिभेद

एक रहस्य समझ न पाया
गोलियों में भी क्यों जातिभेद आया?
नागपुर बंबई में दलित मुसलिम जनता
प्रदर्शन कर रही थी
फिर भी निहत्थों पर गोलियाँ चल रही थीं
मराठवाड़ा मुंबई में दंगाई
दुकानें बस्तियाँ जला रहे थे

पाजामे खोल शिनाख्त कर
चाकू चला रहे थे
ये सब देखकर भी पुलिस खामोश थी
दंगाइयों के लिए
क्यों गोलियाँ बेहोश थीं?

आम आदमी

जब उधर नजर पड़ी
तो हाथों में दिखी
मजबूत हथकड़ी
चोर को ले
पुलिस थी खड़ी
यह बन गया बड़ा यक्ष प्रश्न
गांधी के इस देश में
फटे-पुराने वेश में
क्यों गरीब ही मरता है
पुलिस लाकअप में

लगता है
बस अमीर ही
यहाँ ईमानदारी से
जीवन यापन कर सकता है!

वर्तमान का सच

अगले वर्ष होगा
देश में चुनाव
हर कोई लगाएगा
भविष्य का दांव

सत्ताधारी नजर आ रहा
आखिरी क्षण गिनता
क्या इसलिए हुई उन्हें
अब पिछड़ों की चिंता?
भरती का निकल रहा
स्पेशल ड्राइव
पर ब्राह्मणवादी कहता
नई कोई क्वालीफाइड
आजादी के हो चुके
पूरे सैंतालीस साल
फिर भी देश में
योग्यता का अकाल?
समान अवसर देंगे
शासन निकालता जी.आर.
पर कलम का अधिकारी
करता खराब सी.आर.
शिखर चढ़ने को उपेक्षित
कमर कस कर खड़ा है
परन्तु पुरातनवादी
टांग खींचने पर अड़ा है
कहीं पर कुंठा
तो कहीं मान-अपमान
क्या बनाए हम आपको
यही देश का वर्तमान!

स्वतंत्र भारत

दूसरी बार
कल जब हेनसांग
स्वर्ग लोक से भारत आए

वर्तमान को देखकर
वे बहुत चकराए
सातवीं सदी में जहाँ-तहाँ
अमन ही अमन था
राजा का राज होने पर
फिर भी हिंदोस्तां चमन था
परन्तु आज के इंडिया की
पचास फीसदी जनता तो
चाह रहे हैं खीर और हलवा-पूरी
बाकी बेचारी
गरीबी रेखा के नीचे
जीवन काट रही है,
आजादी का वीर सेनानी
कोने में चुपचाप खड़ा है
तो कुछ गधों (चाटुकारों) के सिर पर
विजय का सेहरा
बंधा पड़ा है यह सब देख
स्वतंत्र के प्रवासी को
कुछ न सूझा पास खड़े नेताजी से
उसने लोकतंत्र का अर्थ पूछा
नेताजी बोले
हमें अपनी आजादी पर
बहुत नाज है
कुछ लोगों द्वारा कुछ लोगों पर
हुकूमत करना
यही गणतंत्र का
सही राज है!

कुटीर उद्योग

देख अतीत का स्वर्णिम इतिहास
मन हुआ बहुत उदास
सुदूर देशों तक व्यावसायिक हलचल
बेबीलोन के बाजारों में
पहुँची थी ढाके की मलमल
पर भारत का बुनकर आज उजड़ गया है
पुश्तैनी धंधे में भी
खूब पिछड़ गया है
कोटा साड़ी रही है रो
अपना वैभव रही है खो
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की
अब खूब रेलम-पेल है
कुटीर उद्योगों का तो
खतम हो रहा बस खेल है।

पारसनाथ

मेरे भीतर की नदी

बबूलों से भरा
हो गया जंगल-जंगल
मूक बधिर सा
मेरा यह जीवन ।

अर्थहीन हो गई है
मेरे भीतर की नदी
और
छलांग लगा गया हूँ मैं
ममता की लहरों में
जो निखालिस तरंगायित हैं
बदतमीजी के आर-पार
तैरना चाहकर भी;
तैर नहीं पाई/ मेरी जिंदगी
क्योंकि
अपने होने का एक अहसास
झुठला गई है
बेहयाई को तड़पा गई है ।

नदी नदी है
और मेरा होना
उसके भीतर तैरना

एक वहम मात्र है ।
यकायक
आहत हुआ हूँ मैं
एक बड़ा उत्सव हुआ है
मेरी दरिद्रता के रूपों का
असमय उद्घाटन हुआ है
मेरे खोखलेपन का
फिर
वह मुझे अधीर कर गई है
खुशी मेरी छिन गई है
सपनों में तन गई है ।
मेरे इरादे और नतीजे
बखूबी जानते हैं लोग
मेरे अपनेपन को पहचानते हैं लोग
मेरे भीतर की नदी को
उबालते हैं लोग ।

अब जिन्दगी
कोमल होने की कोशिश में
आत्मगरिमा के भाव-सा
चुपचुपा है
मैं नहीं जान पाया
हताश नहीं हुआ
अंधेरी गली/ सुरँग में
खींचता गया
फिर भी
उदास नहीं हुआ हूँ ।

शब्द गहराए हैं
सदियों से सुन्न हुए

पत्थरों पर
सिर पटकने के बजाय
कुनमुनाए हैं।

अपनी वह चिथरायी जिंदगी
मूकबधिर सा जीवन
जीना सीख लिया है
जिसे लोगों ने भटकाव दिया था
यथार्थ को परख लिया है।
'मेरे दुःख में कोई ध्वनि नहीं है
मेरा सुख कोई सपना नहीं है
सिर्फ संगम है/ आँख-मिचौली है।'
रेत की प्यास बनी यह दुनिया
पराजित, पराभूत लगी है
तार-तार रूपों में, छिन्न-भिन्न
दीखी है
छिन्नमस्ता औघड़ की तरह
मेरा यह जीवन
बबूलों से भरे हुए हैं
मेरे भीतर की नदी में!!

फिरौती

मृगतृष्णा की तरह
हकला गई है
आम मनःस्थितियों को
तड़पा गई है
बहुत सारी जिंदगियों को
अवरोधों का विस्तार
दिखा गई है/ अपने करिश्मे

सहमे, डरे जन-जन को
भीगे आँसुओं में
दुबके हुए देखकर
अपहरण करने की उनकी
निखालिस आदतें
बदतमीजी पार कर गई हैं
गोली, बंदूकों की नोक पर
जुल्म ढा गई हैं
महत्वाकांक्षा की सारी सीमाएँ
बेतरतीब मर्यादा की लकीरें
लांघ गई हैं
खींचते भींचते
मानवीय सभ्यता को
तेजाब में डुबोकर खा गई हैं।

आज की व्यवस्था
आज का प्रशासन
कीचड़ में तलाशने लगा है
अपनी आस्था से जुड़े
अहम् मुद्दों को
जिनके मानक राख
उछाले गए हैं
निस्सीम आकाश की ओर
फिरौती का नायाब नमूना
नए-नए करिश्मों में
चिपके लगे हैं
उनकी अनगिनत कतारें।
प्रशासन पंगु हो गया है
निकम्मे हो गए हैं अधिकारी
तलाश, तहकीकात में

दिखा रहे हैं कलाबाजियाँ
नकली मुठभेड़ में तनकर।
रोज-रोज
तमगा पाने की फिराक में
बेकसूर लोगों का लहू बहा रहे हैं
बचाव से ज्यादा संकल्प
दोहरा रहे हैं।

अपहरण, फिरौतियाँ जारी हैं
नाकाम हुआ है प्रशासन
लग गए हैं अनगिनत
प्रश्न चिह्न/ राष्ट्रीय सम्मान पर
युगांतकारी बदलाव के
आयाम खुले हैं
अमन-शांति के
बहुत सारे/सपने संजोए।

अपहरण और
फिरौतियों का संसार
कोई मृगतृष्णा है, नहीं
हकीकत है
बदचलनी, बेदर्दी का
है एक अनुपम तोहफा
जिन्हें झुठला रही है
आज की व्यवस्था
आज की मनःस्थितियाँ
और लोग लगे हैं
दीखे हैं/ चिनगे हुए!!

एन. मनोहर प्रसाद

कौन है दलित

कौन है दलित?
हम में से हर कोई
कहाँ थे हम आज तक?
कुचलते जाते रहे हैं हम
दूसरे जमात के पाँव तले
चूँकि यह कौम यह समाज
नहीं थे कभी हमारे न हैं न होंगे ही
भले ये धरती हमारी है
और हम हैं इस धरती की संतान!

क्या करते रहे हैं हम आज तक
आपस में बँटे-बँटे जुदा-जुदा?
हम रोते-रोते सहलाते रहे
खुद ही अपने घाव अकेले
चाहे वे घाव
कितने ही संगीन खतरनाक और
क्यों न हों?
क्या हमारी योजना?
हम नहीं रहना चाहते हैं अब गुँगे

तब क्या करें हम?

हमारी आवाजें साफ हैं
तेज और जोरदार हैं
वे आवाजें गूँजेँ और पड़ेँ सुनाई
अपनों के ही बीच अपने ही समुदाय में
सुनते तो आए ही हैं हम निरंतर
अब नहीं सुनेंगे दूसरों को।
बस बहुत हो चुका
आओ हम खोजें
कौन-सी आवाज है समझदार
कौन-सी साफ और सुनाई पड़ने लायक
किसके विचार हैं स्पष्ट किसके शुभ
उन्हें बढ़ाएँ
पहले अपनों में फिर दूजों के बीच
पूरे समाज में
देश चौहृदयों के बाहर भी
राष्ट्र की चौहृदयों के भी बाहर

बस बहुत हो चुका अब
दूसरों द्वारा शोषण
हमारी समस्याओं को सुनने-सीखने
देखने-मनन करने का
दूसरों द्वारा उपदेश-परामर्श का नाटक
वह भी उनसे
जो हमारे पुश्तैनी-परंपरागत शोषकों के हैं
वारिस
आओ हम अपनी आवाज
काउंसिल विधानसभा लोकसभा
और विश्व-मंच तक खुद ले जाएँ

हमें क्या चाहिए अब?

हमें चाहिए अब अतीत-वर्तमान और भविष्य
हमारे हिस्से का हर अंश
हमें नहीं चाहिए
दूसरों की दी हुई रियायतें या उपहार
मुआवजा या अनुदान भी नहीं
ना ही अतीत में भोगे हुए नुकसान का खामियाजा
ना ही बख्शीश - न ही रहम
दूसरों के हिस्से का
हम नहीं चाहते हैं एक भी कण
लेकिन हमारे भूत वर्तमान भविष्य का

चाहिए हमें हर हिस्सा
अगर कोई बैठा है दबाए
अतीत का हिस्सा हमारा
या हमारे बाप-दादाओं का भाग
उन्हें अब आगे अपने पास रखने का
न काम है न हक
अच्छा हो यदि वे खुद ही दें छोड़ उसे
भलमनसाहत के साथ
उन्हें नहीं है जार-जार रोने की दरकार
या कि रहम माँगने का हक
ना वो माँगे क्षमादान
अपने आकाश से स्वर्ग से
फरिश्तों-देवों और देवियों से
न दें वे दलील कोई
अपनी मासूमियत और बेगुनाही की
न करें बहस कि उन्हें
क्यों माना जाए जिम्मेवार
या किया दण्डित

उन पापों गलतियों और जुल्मों के लिए
जो किया उनके पूर्वजों ने

हम भी नहीं देना चाहते हैं
इन सबके लिए उन्हें कोई दंड
पर यह कहकर ही बस उन्हें
कतई कोई हम नहीं कि वे रहें काबिज
हमारे किसी भी हिस्से पर
उनके पूर्वजों ने ठगा था हमें
लूटा भी था
छीना और चुराया भी था
पहले तो हम चाहते नहीं कि हमसे कुछ कहे कोई
दे नसीहत या मशविरा
या कुछ करे या बोले हमारी तरफदारी में
कहीं भी किसी भी वक्त किसी जगह
अब या भविष्य में!
हम सोचे नहीं जागें
हाथ से हाथ मिलाएँ
सोचें
संगठित होवें आगे बढ़ें!

नाजायज फेंके हुए बच्चों की तरह

दलित सदैव रहे
नाजायज फेंके हुए बच्चों की तरह
पूरी कौम से उपेक्षित
समूचे समाज से परित्यक्त
सभी धर्मों द्वारा शोषित
राजसत्ता द्वारा विस्मृत
दलितों को दिए गए जख्म

छोड़ दिया गया उन्हें बेसहारा
खुद ही करने को अपनी मरहम-पट्टी

अब हमारे बीच आई हैं
सौम्य रूप में कार्यरत
संभ्रांत स्वैच्छिक संस्थाएँ
जो दूसरों द्वारा होती हैं संचालित
हमारे नाम पर,
ताकि वह खा सकें उसका फल
रसदार गूदा
और हमारे लिए छोड़ दें
गुठली और छिलके
यह कहते हुए कि
'फलों का सबसे पौष्टिक तत्व इन्हीं में है' ।

हम नहीं माँगते स्वर्ग

हम नहीं माँगते स्वर्ग
इस धरती पर
हम तो किंचित राहत-उपराम और आराम
या दम मारने की फुर्सत चाहते
जगह चाहते
जगह एक कोलम भर :
शायद अर्ध-कोलम भर;
या बस एक कौमा भर,
बस यही है मेरी जिन्दगी का पूर्ण प्रश्न?
और यही प्रश्न है मेरे अभागे लोगों का भी
तुममें से कोई है इससे अवगत
या है कोई ऐसा जो कम से कम इसे समझे?

कोड

। !:;, ?
मैं चाहता हूँ एक पूर्ण विराम लगाना।
चहुं ओर फैली समस्याओं पर
लेकिन सब हैं जो समयातीत रहस्य!
अंतहीन असीम पीड़ाओं का सातत्य :
मैं बहाता रहता हूँ आँसू कुछ शांति की आशा में;
कम से कम अस्थायी विराम त्रास
क्षणिक दम भरने भर मिले समय,
क्या हमारे जैसे लोगों या समाजों के लिए कहीं है कोई आशा?

विराम

विराम।
पूर्ण विराम।
एक पूर्ण विराम।
रोकने के लिए चतुर्दिक फैले सब अन्याय!

कहाँ हैं दलित लेखक

कहाँ हैं दलित लेखक
दलित बुद्धिजीवी?
हम उन्हें पहचान नहीं सकते
ना ही दे पाते उन्हें सम्मान
हम भोग रहे दासत्व
मुद्दतों से रहते आ रहे हैं गुलाम
कि हम बस सत्ताधीशों से ही हैं डरते
और सम्मान भी उन्हीं का करते
कि वैभव के तमाशे और नंगी सत्ता को ही

हम पूजते उनके ही आज्ञाकारी होते
हम होते हैं प्रभावित
तुच्छ अनुकंपाओं और रोटी के चंद टुकड़ों से
क्षुद्र उपहारों या कलदारों (पैसों)
और चुटकी भर लाभों से!

उनका लक्ष्य

बच्चों को शिक्षा से
जन को धन से
जनता को राज-सत्ता से वंचित
रखना ही है लक्ष्य
अभिजात शासकों उनके हाकिमों
और सरकारों का!

विस्मयादिबोधक

आश्चर्य!
सचमुच आश्चर्य!
सचमुच जीवंत आश्चर्य!
गुजरते आनंद पर नहीं!
किन्तु हमारे अनंत दुर्भाग्य पर!
डूबते हुई अंतहीन पीड़ाजनक समस्याओं पर
थोपी गई हमारी सर पर अंतहीन सहस्त्राब्दियों से!
अवांछित शत्रु नस्त होने पर भी
आश्चर्य है कि हम अपने समुदाय के रूप में हैं बरकरार!

शिक्षा

बुद्धि प्रदीप्त करने के लिए

शिक्षा की है जरूरत
न कि कुछ को दें रोजगार
बाकी को रखें बेरोजगार से अभिशप्त!

अप्प दीपो भवः

बुद्ध ने आनंद से कहा
'अप्प दीपो भवः'
आओ हम दलित सब
स्वयं अपने लिए बनें मार्गदर्शक।

(रमणिका गुप्ता द्वारा अंग्रेजी से अनूदित)

असंगघोष

कहाँ हो मुक्तिदाता

नाचता रहा दिन-ब-दिन
अपनों की ही उँगलियों पर
उनके इशारों के अनुरूप / तृप्त करता रहा
उनकी लालसाएँ
हरदम मारकर अपनी इच्छाएँ
जन्म से ही मजबूत अदृश्य धागों में बँधा
मैं आज तक बंधुआ हूँ,
और तुम!
कहाँ चले गए हो
मुक्तिदाता?

जाति जाती

ओ जाति!
तू जाती क्या
बेड़ियाँ तोड़
बंधन मुक्त कर
तू जाती क्या
ओ जाति!
मत बहरी बन
अबे ओ जाति

तू जाती क्या
बामन के घर
उसकी महारू से पूछने
तेरा जनेऊ हुआ क्या?

शम्बूक

शम्बूक!
तुमने रामराज्य में
तपस्या कर
सशरीर स्वर्ग जाना चाहा
तुम्हारी यही तपस्या
सही नहीं गई

ब्राह्मणों, क्षत्रियों व
खुद राजा राम तक
सबने षड्यंत्र रचा, और
तुम्हारा सिर धड़ पर न रहा
तुम मारे गए बेकसूर
राजा राम के हाथों
रामराज्य में तब से
हत्यारा राजा राम
महिमामंडित हो
भगवान श्री राम हो गया।

कुसुम वियोगी

तुम्हारे महलों को

नथिया ने,
नागफनी से कंटीले
95वें बसंत देखे हैं
अपनी फूस-की मट्ठैया में
खूब समझने लगी है
तुम्हारी शतरंज की शातिर चालें
अब उसकी हंडिया में
साग नहीं खदकता
खिचड़ी खदकती है
विपल्व की।

अब
जब भी उसकी फूस-की मट्ठैया जलेगी
आग की लपटें
धुएँगी तुम्हारे महलों को
गाय रंभाएगी
सोन-चिरैया भुनेंगी
चटर-पटर चबेना-सी
बम-बारूद की फसलें उगेगी
तुम्हारे खेत-खलिहानों में!!

अन्याय के विरुद्ध

जब भी कभी
उठकर खड़ी होती हूँ
अन्याय के विरुद्ध
तुम्हारे खिलाफ
तो
मुझे ही घुमाया जाता है / निःवस्त्र
देखने को गुप्तांग
तुम्हारी ही माँ-बहनों सदृश्य

बुझाना चाहते हो
अपनी कुंठाओं की हवस
ढलकर / जात्याभिमान के सांचे में
लेकिन
नहीं बेचती मैं / अपनी नारीधर्मिता को
तुम जैसे भेड़ियों/दरिंदों के हाथ
एक तरफ / तुम्हारी ही
माँ-बहन और बेटियाँ
उर्वशी और अप्सरा बन / करती हैं नृत्य
फाइव स्टार होटलों में
बन के कालगर्ल और कैबरे डांसर
करने को धनोपार्जन
इस सभ्यता की लंगड़ी दौड़ में / वह
पाश्चात्य सभ्यता की प्रतीक है
जो मारती है तमाचा
तुम्हारी 'सभ्यता के गाल पर'
पूछना चाहती हूँ
तुम्हीं से एक सवाल चरित्रवान कौन?
मैं या कि वो?

गंगाराम परमार

बोल के तो देख

अंधकार है, तो अंधकार बोल के तो देख
सरकार है, तो सरकार बोल के तो देख
अब तो मैदान खुला है तुम्हारे लिए
फकत मैदान में आ, तलवार-तलवार बोल के तो देख
उनके जूते का जूता बन न, अब तो
झूठ को झूठ और गद्दार को गद्दार बोल के तो देख
देख सुबह खड़ी है तेरे सामने
तू खबरदार है, तो खबरदार बोल के तो देख
रोशनी रोशनी, मैं दम-ब-दम हुआ
सामने मेरे, रफ्तार रफ्तार बोल के तो देख
कोई नहीं आया, चीरके आसमाँ यहाँ
एक बार, अवतार अवतार बोल के तो देख
जिंदगी भीख नहीं, अधिकार है
खुलेआम, अधिकार अधिकार बोल के तो देख

अभी तक

प्यार की भी जात है अभी तक
बहुत बड़ा आघात है अभी तक
रोशनी रोशनी में हुआ, तो
वो बोले, रात है अभी तक
भूख, भेद, भाषा, भगवान तक

कितने सारे सवालात हैं अभी तक
ऊंच-नीच तो रहेगा ही, यहाँ
उनकी बिरादरी में बात है अभी तक
सूरज किसी के बाप का नहीं
हम भी आसमाँ सात हैं अभी तक
न चाहो तो भी, लड़ना पड़ेगा दोस्त
लड़ाई तो उनकी सौगात है अभी तक
तुम्हें आदम नहीं मानते वो
दाढ़ी चोटी की जमात है अभी तक ।



दलित चेतना का साहित्य देश में अब उस स्थिति को प्राप्त कर चुका है जहाँ उसे नकारा नहीं जा सकता। 'दलित चेतना : कविता' पुस्तक इसी सामयिक अनिवार्यता को निरूपित करती है। इस पुस्तक में सम्मिलित रचनाओं को देखने से यह साफ पता चलता है कि दलितों की पीड़ा की पर्तें एक-दो नहीं, अनेक हैं और उन पर्तों को उघाड़े बिना उनके निजी संसार से रिश्ता कायम करना संभव नहीं है। दलित चेतना—कविता की इस पुस्तक में संकलित रचनाएँ इस अनिवार्यता को पूरा करती हैं। दलित साहित्य आंदोलन के मिजाज एवं उसकी दशा-दिशा को समझने में इस पुस्तक का प्रकाशन अपने आप में बिल्कुल अनूठा प्रयास है क्योंकि इसमें दलित साहित्य आंदोलन से जुड़े लगभग सभी उल्लेखनीय हिन्दीभाषी कवियों की रचनाएँ संकलित की गई हैं जिनसे दलितों की पीड़ा को ठीक से समझा जा सकता है। दलित चेतना के इतने सारे कवियों को एक जगह इकट्ठे पढ़ना भी एक अभूतपूर्व अहसास है।

हिन्दी में इस चेतना की सम्भवतः यह पहली पुस्तक है जो एक मिशनरी जील की द्योतक है।



आवरण चित्र : अवधेश मिश्र (साभार)